अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

वर्ष: ९ | अर्द्ध वार्षिक | अंक: 2

गुरू पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्ल विक्रम संवत 2082, 10 जुलाई 2025

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रद्धेय 1008 स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज

जन्म-चतुर्दशी ज्येष्ठ शुक्ल सं. 1991
(15 जून 1934)

ब्रह्मलीन-सप्तमी अगहन शुक्ल सं. 2077
(21 दिसम्बर 2020)

अखण्ड विशम्भरानन्द ज्ञान सरिता

वर्ष 9, बसंत पंचमी, आषाण शुक्ल पूर्णिमा विक्रम संवत् 2082

स्वामी श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता संत आश्रम के लिये प्रकाशक, मुद्रक, प्रधान सम्पादक श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा द्वारा अमर ज्योति प्रेस, झांसी द्वारा मुद्रित किया गया व श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, लहर देवी रोड, वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झांसी से प्रकाशित।

सम्पादक– श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

पं.सं. UPHIN/2016/73634
भारत सरकार

संस्थापक एवं संरक्षकः
श्री आर. के. मिश्रा
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति
लहरगिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

आदि सम्पादकः
ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी शुकदेवानन्द जी

प्रधान सम्पादकः
श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा

सम्पादकः
श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

सम्पादन मण्डलः
डॉ. रंजना शर्मा
श्रीमती कुमकुम बिसरिया
श्री अरविन्द देवलिया
श्री वैभव वर्मा

प्रकाशन कार्यालयः
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम
धर्मार्थ समिति लहरगिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)
पिनकोड–284 003
मोबा. : 8604924948

अर्द्धवार्षिक

मूल्य : निःशुल्क वितरण स्वाध्याय हेतु

–मुद्रक–
अमर ज्योति प्रेस
सदर बाजार, झाँसी, मोबा. : 9415030917

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	राजेन्द्र कुमार मिश्रा	3
2.	पुरोवाक्	प्रमोद कुमार गुप्ता	5
3.	प.पू. स्वामी शुकदेवानन्द जी का योग शिविर में प्रवचन – नवम् पुष्प	प्रमोद कुमार गुप्ता	6
4.	सर्व सार राम	राघवेन्द्र जी	7
5.	साक्षी/दृष्टा	पंकज मिश्र	7
4.	वेदान्त की व्यवहार में आवश्यकता	ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य	8
5.	मीमांसा दर्शन	पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी	11
6.	मुमुक्षुत्व	प्रमोद कुमार गुप्ता	12
7.	शास्त्रों और शास्त्रज्ञों का जीवन में महत्व	डॉ. रंजना शर्मा	14
8.	नाम जप	गार्गी चैतन्य	17
9.	शब्द की शक्ति	अरविन्द देवलिया	20
10.	मन की तरंगें	वैभव शर्मा	22
11.	सम्पूर्ण विश्व भगवान की अभिव्यक्ति	कुमकुम बिसारिया	23
12.	आचार्य शंकराचार्य और निर्वाणष्टकम्	राघवेन्द्र प्रताप सिंह शंकरदूत	24
13.	राम	रविन्द्र यादव	28
13.	उड़ोगे कैसे	शंकरदास	29
14.	असंग रहो और भगवान को अपना मानो	डॉ. अनिल कुमार दुबे	30
15.	महावाक्य		31
16.	सद्गुरु आरती		32

संपादकीय

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कुछ अन्यत्र नहीं है। व्यवहार जगत में जब तक संदर्भित विषय का ज्ञान नहीं हो, आप उस विज्ञय के ज्ञाता नहीं बन सकते। उसी प्रकार अध्यात्म जगत में जब तक आपको तत्वज्ञान नहीं होता है, मोक्ष प्राप्त होना असम्भव है। मोक्ष प्राप्त होगा तो आत्मज्ञान से, मोह दूर होगा तो आत्म ज्ञान से। राम भक्ति प्राप्त होगी तो ज्ञान से। संशय दूर होगा तो ज्ञान से। मन में शान्ति स्थिरता मिलेगी तो ज्ञान से ही मिलेगी। इसलिए साधक का सबसे पहला प्रयास ज्ञान प्राप्त करना होना चाहिये। फिर यदि जीवन रहा तो परोपकार करो, सेवा करो, सत् कर्म करो, शुभेच्छा करो। जब तक ज्ञान ही नहीं होगा, विवेक की उत्पत्ति ही नहीं होगी तो यह कैसे निश्चित करोगे कि क्या सत् कर्म है? क्या परोपकार है? अथवा क्या सेवा धर्म है?

ज्ञानी करे अनेक कर्म, विधिवत् जग व्यवहार।
लियै न धूम्र आकाशवत्, जान्यो जगत असार।।
फल कर्मों की वासना, देवै मन से त्याग।
ब्रह्म अहम् यह जानकर, करे कर्म अनुराग।।

योग वशिष्ठ में बाल्मीकि ऋषि और भरद्वाज के संवाद से जीवन मुक्त की स्थिति कैसी होती है और भगवान राम किस प्रकार जीवन मुक्त हुए, इसका बहुत सुन्दर चित्रण किया है। यह सभी का कल्याण करने वाला है।

बाल्मीकि जी कहते हैं 'यह जगत जो भासता है, वास्तव में कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ। यह अविचार से अज्ञान से भासता है। विचार करने से ज्ञान होने से इस जगत की निवृत्ति हो जाती है। जैसे आकाश में जो नीलता भासती है, यह भ्रम से है। वैज्ञानिकों द्वारा भी सत्यापित किया गया है कि अंतरिक्ष में केवल शून्य विराजित है। अतः जब विचार करके देखते हैं तो इस नीलिता की प्रतीत दूर हो जाती है। इसी प्रकार अज्ञान से जगत भासता है और ज्ञान होने पर लीन हो जाता है।

अब हम इसको वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझते हैं। विज्ञान के द्वारा हमें ज्ञात है कि पदार्थ की सृष्टि 3 फंडामेंटर पार्टिकल के कारण होती है। यह पार्टिकल हैं– इलैक्ट्रान, प्रोटोन और न्यूट्रॉन। इनमें प्रोटोन और न्यूट्रॉन परमाणु की नाभि में भासते हैं और इलैक्ट्रॉन नाभि के चारो ओर प्रकाश की गति से घूमते रहते हैं। सृष्टि में सबसे छोटा परमाणु हाइड्रोजन का है और इसका माप लगभग 1 आर्मस्ट्रोम युनिट अर्थात् 10^{-10} घन मीटर है। इस परमाणु की जो नाभि है वह

लगभग 10^{-14} घन मीटर की है। हमें वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञात कराया गया है कि परमाणु का पूरा तत्व पदार्थ नाभि में ही स्थित है। वास्तव में अगर परमाणु एक फुटबाल के मैदान बराबर है तो उसकी नाभि एक टेबल टेनिस की गेंद समान होगी और इसी गेंद में स्थित है प्रोटोन और न्यूट्रॉन जिनका सही नाप अभी तक ज्ञात नहीं है। बाकी सभी स्थान पर केवल शून्य ही विद्यमान है। कहने का तात्पर्य है कि विज्ञान के दृष्टिकोण से भी उसके ज्ञान के द्वारा जगत की निवृत्ति सिद्ध होती है। अतः अज्ञान से जगत भासता है और ज्ञान होने से वह लीन हो जाता है। जब तक सृष्टि का पूर्ण आभास नहीं होता तब तक परम पद की प्राप्ति नहीं होती। जब दृश्य का पूर्ण अभाव हो जायेगा तब शुद्ध चिदाकाश आत्म सत्ता भासेगी।

बाल्मीकि जी कहते हैं– संसार भ्रम मात्र सिद्ध है, इसको भ्रम मात्र जानकर विस्मरण करना ही मुक्ति है। वासना ही बन्धन का कारण है। वासना से जीव भटकता फिरता है, वासना का क्ष्ज्ञय हो जाने से परम पद की प्राप्ति होती है जो वासना में निर्लिप्त रहता है उसका नाम मन है। जब संसार की सत्यता और वासना की निवृत्ति हो गई तब मन का नाश स्वभाविक है। जब मन नष्ट हुआ तो परम तत्व की प्राप्ति निश्चित ह। इसलिये बन्धन का कारण वासना है। वासना दो प्रकार का है– एक शुद्ध और दूसरी अशुद्ध। जब वास्तविक स्वरूप के अज्ञान से अनात्म रूप देहादिक में अहंकार करने पर जब अनात्मा में आत्म अभिमान होता है तब नाना प्रकार की वासना उपजती है और इन्हीं वासनाओं से इस पंचभूत शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार इत्यादि जन्म लेते हैं। उसी प्रकार इस वासना के क्षय होने पर पंचभूतों का शरीर नहीं रहता। अतः सब अनर्थों का कारा अशुद्ध वासना है। शुद्ध वासना में जगत का अत्यन्त अभाव निश्चित है। जहाँ अज्ञानी की वासना अनेक जन्मों का कारण बनती है, ज्ञानी की वासना जन्मों का कारण नहीं बनती। अज्ञानी की वासना रस सहित है इसलिए जन्म का कारण है। ज्ञानी की वासना रस रहित है, वह जन्म का कारण नहीं। ज्ञानी किसी गुण के साथ मिलकर चेष्टा नहीं करता, वह खाता है, पीता है, देता है, बोलता है, चलता है, विचार करता है, परन्तु अन्दर अपने आपमें सदा निश्चेष्ट अद्वैत भाव से स्थित रहता है। इसलिए निर्गुण और अरूप है। उसकी चेष्टा जन्म का कारण नहीं है। अतः जीव में जब तक अहंकार सहित वासना होती है तब तक पुनर्जन्म निश्चित है। जब अहंकारों से रहित हुए तो मुक्ति निश्चित है।

शिवोऽहम्।

– राजेन्द्र मिश्रा (देहरादून)
प्रधान सम्पादक

पुरोवाक्........

जीवन में दुःख आने पर हम उसको जीवन से हटाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु मूलतः वह न तो किसी भौतिक संसाधनों से दूर हो पाते हैं और न ही विषम परिस्थिति या हो चुके घटना क्रमों को हटाने के अथक प्रयास से ही सम्भव हो पाता है। सुख–दुःख का तो आना–जाना बना ही रहता है, यह सभी के जीवन में पूर्व जन्मों में किये कर्मों के प्रतिफल स्वरूप निर्मित प्रारब्ध एवं जन्म–जन्मान्तरों के संचित कर्मों के कारण सुनिश्चित ही है। जिन्हें पूर्णतः रोक पाना एकदम सहज नहीं होता, जबकि प्रायः हम दुःख आ जाने पर स्वयं का संतुलन खो बैठते हैं। तज्जनित चिंता से ग्रसित हो जाने पर विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग शरीर में स्वतः व्याप्त होने लगते हैं।

दुःख से स्थायी मुक्ति का साधन, अपने अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त करने पर स्वतः ही परम तत्व से तादत्म्य स्थापित हो जाता है। ऐसा भी नहीं है कि इससे जीवन में विषम परिस्थितियों से सृजित दुःख का आना समाप्त हो जाएगा। वह तो प्रारब्ध वश आयेंगे ही, किन्तु उन परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति हमारे अन्दर उत्पन्न हो जाती है जिससे आए हुए दुःख फिर हमें व्यथित या विचलित नहीं कर पाते हैं। इसके लिए सत्संग, स्वाध्याय, निदिध्यासन जीवन में धारण करते हुए परम तत्व का चिंतन करना एक सोपान है।

इसके लिए ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की वाणी पर पूर्णरूपेण समर्पित भाव के साथ श्रद्धा पूर्ण विश्वास का होना अति आवश्यक है। जिनके आशीर्वाद से, मन के अन्दर व्याप्त दुःखों का शमन हो जाता है और मन शान्त परम आनन्द की अनुभूति से ओतप्रोत हो जाता है।

इस साधन को प्राप्त करने में आपको एक दृष्टि प्रदान करने की दृष्टि से अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, झाँसी से प्रकाशित की जाने वली अर्ध वार्षिक "अखण्ड विश्वम्भरानन्छ ज्ञान सरिता" पत्रिका छोटा सा प्रयास रहता है। जिसमें साधनारत संतों, सद्गुरुओं एवं विभिन्न आध्यात्मिक चिंतकों द्वारा सद् विचार पुष्पों के रूप में आप सुधि पाठकों तक चिंतन साधन के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं।

सद्गुरु के दिखाये गये रास्ते, मार्गदर्शन से एवं उनके आशीर्वाद से जब हम परम तत्व का चिंतन करके उसके बोध को आत्मसात् कर लेते हैं तब निश्चित रूप से कहा जा सकता है दुःखों के आने पर उन्हें भी दृष्टा की दृष्टि से देखने पर उसकी अनुभूति से मन अन्तर्मन व्यथित नहीं हो पाता। सीधी सरल भाषा में कहा जा सकता है कि हमारा आध्यात्मिक चिंतन के द्वारा जीवन में आए हुए दुःख सहजता से दूर जाते प्रतीत हो जाते हैं।

शिवोऽहम्।

– प्रमोद कुमार गुप्ता
संपादक

परम पूज्यनीय श्री स्वामी शुकदेवानन्द का योग शिविर में प्रवचन – नवम् पुष्प

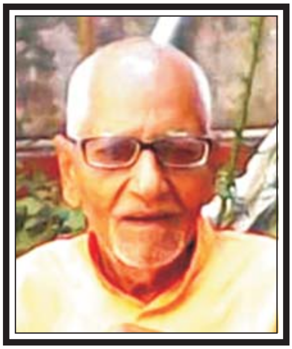

परम तत्त्व को जानने के लिये जब हम विचार करते हैं तब सर्वप्रथम विचार आता है कि यह संसार क्या है? मैं और तुम के रूप में कौन है, मैं कहां से आया हूँ, मेरी माता कौन हैं एवं मेरे पिता कौन हैं?

इस सृष्टि में दो ही चीजें हैं, दृष्टा एवं दृश्य। दृष्टा का कभी अभाव नहीं होता जबकि दृश्य क्षण–क्षण में बदलता रहता है। दृश्य है नहीं, मात्र स्वप्न की तरह प्रतीत होता है। दृश्य जिस अधिष्ठान में प्रतीत हो रहा है. वह ष्मैंष सत्य है क्योंकि मेरा कभी अभाव नहीं है। मैं ही जाग्रत में विश्व के रूप में प्रतीत हो रहा हूँ। जिस प्रकार स्वप्न का सारा दृश्य स्वप्न दृष्टा ही स्वप्न पुरुष बनकर देखता है इसी प्रकार मैं ही, सारी सृष्टि का प्रकाशक होता हूँ। जिस प्रकार से रस्सी में किसी को सर्प दिखायी देता है, किसी को माला नजर आती है जबकि माला या सर्प दिखने का कारण प्रकाश की कमी होती है। इसे वेदांत के शब्दों में रस्सी का अज्ञान कहेंगे। सत्य का न दिखना एवं जो वस्तु है ही नहीं, उसके प्रतीत होने को वेदांत ने माया कहा है। जाग्रत अवस्था में इंद्रियों के माध्यम से हम संसार में जो भी दृश्य देखते हैं वह सब इस प्रकृति का ही विलास है। इस प्रकृति का ही नाम माया है इसी को अविद्या कहा गया है, अविद्या का अर्थ ही होता है कि जो कुछ भी दिखायी दे रहा है वह विद्यमान नहीं है वह मात्र इंद्रजाली को माया है। यह इंद्रजाली और कोई नहीं, सत् ही इंद्रजाली है वही चेतन बनकर यहाँ विश्व, तेजस् एवं प्राज्ञ के रूप धारण करता है। यही विराट है जो विश्व का प्रकाशक है विश्व यानो जाग्रत का दृष्टा जो इंद्रियों के माध्यम से इंद्रिय के देवता की उपस्थिति में जाग्रत के दृश्यों का प्रकाशक है। समस्त विश्व का प्रकाश होने से इसी का नाम विराट है तथा स्वप्न के दृश्यों के प्रकाशक को तेजस् कहा है सार सूक्ष्म जगत का प्रकाशक होने से इसी का नाम हिरण्यगर्भ भी है।

जब हम प्रगाढ़ निद्रा में होते हैं तब हमारी समस्त वासनायें बीज रूप में मन एवं बुद्धि में विद्यमान रहती हैं। इसी का नाम प्राज्ञ है, समष्टि का बीज जो प्रलयावस्था में अपने अंदर समेट लेता है तथा सर्गी (सृष्टिकाल में) की स्थिति में वही पुनः सृष्टि को प्रकट कर देता है उसी का नाम ईश्वर है, जिस प्रकार आत्मा चेतन ही जाग्रत में विश्व है। स्वप्न में तेजस् है तथा सुपुति में वही प्राज्ञ है। वही आत्म चेतन समस्त प्राणिमात्र की आत्मा होने से परमात्मा है इसी को सामवेद के छादोग्योपनिषद् में तत्त्वमसि के द्वारा उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को समझाया कि जिस प्रकार एक मिट्टी के जानने से समस्त घड़ा, सकोरा मिट्टी के रूप में जान लिये जाते हैं कि सबमें वह मिट्टी एक ही है।

इसी प्रकार सारी सृष्टिमें एक ही सत् व्यापक है वही हमारी आत्मा है उसी का नाम ब्रहा है। जो कुछ भी दृश्य दिखायी दे रहा है वह सत्य नहीं है इसमें सत्य केवल वह सत् ही है, जो सर्वाधिष्ठान एवं सर्वावभासक ﴾सबका प्रकाशक﴿ आनंद स्वरूप है वही में हूँ। वही तू है उसी का नाम तत् है यही आत्मा के रूप में त्वं हैं।

संकलनकर्ता– **प्रमोद कुमार गुप्ता**
योग प्रशिक्षक, झाँसी

सर्व सार राम

गीता में जो कृष्ण ने गाया, उपनिषदों का सार समाया।
गूढ़ धर्म की महागाथा ने, व्यास से महाभारत उपजाया॥

परमहंस पुराण भागवत, बादरायण ने तत्त्व दिखाया।
करुण हृदय की पुकार ने, बाल्मीकि रामायण प्रगटाया॥

सम्मति लेकर सब ग्रन्थों की, तुलसी ने मानस पान कराया।
वेद पुराण इतिहास, शास्त्र का सार लेकर सद्गुरु ने सबका॥

दो अक्षर का राम बनाया, सारे ज्ञान को इसमें छिपाया।
कृपा के कारण बाँट दिया वो, जिसने सबके दुःख को मिटाया॥

जपते–जपते राम–राम बस, जीव को ब्रह्म से आन मिलाया॥

– राघवेन्द्र जी

साक्षी / दृष्टा

एक छोटा सा प्रयोग करें– कभी शांत बैठकर केवल अपने मन को देखें। आप देखेंगे कि मन आपको विचारों की अनन्त संभावनायें दिखाएगा और जिस विचार पर आप रुक जायेंगे, वहीं मन आपको उलझा देगा। बस देखिए कि कैसे विचार आ रहे हैं और जा रहे हैं। और यह क्रम कभी रुकता नहीं। जब आप ऐसा प्रयोग करेंगे तब आपको यह अनुभव होगा कि भीतर कोई दृष्टा है। एक साक्षी जो इन विचारों को आते–जाते देख रहा है लेकिन स्वयं उनसे मुक्त है।

राम कृष्ण से को बड़ो, जिन्होंने गुरु कीन।
तीन लोक के जो धनी, गुरु आगे अधीन।।

हर मानव के जीवन में गुरु का होना जरूरी है। बिन गुरु मानव जीवन व्यर्थ है।

संकलनकर्ता– **पंकज मिश्र**

वेदान्त की व्यवहार में आवश्यकता

हम सभी को जीवन में व्यवहार करना ही पड़ता है। व्यवहार का प्रकार भिन्न-भिन्न हो सकता है, पर जीवन में व्यवहार अनिवार्य है। व्यवहार में मुख्य रूप से दो बिन्दु हैं। एक अपनी इन्द्रियों से विषयों को ग्रहण या अनुभव (ज्ञान) तथा अनुभूत विषयों परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया। अंग्रेजी में कहें तो व्यवहार माने क्ष्मतबमचजपवद और त्मेचवदेमण जब तक जीवन है तब तक ज्ञान और प्रतिक्रिया रूपी व्यवहार हम करते ही रहेंगे। यदि राह में हमें गर्मी लगती है, तो हम कोई छाया वाला स्थान या पेड़ प्राप्त करने हेतु प्रतिक्रिया करेंगे ही। जीवन में हमें व्यक्ति, वस्तु, पशु, पक्षी, वनस्पति, देश, काल आदि के साथ रहना पड़ता है। परन्तु उनके बीच कैसे रहें, यह समझना बहुत आवश्यक है।

प्रायः लोग समझते हैं कि पढ़ाई हो गई, नौकरी लग गई, शादी हो गई, बस। अब कुछ और पढ़ने, जानने या समझने की क्या आवश्यकता है? हम तब भी सुखी होते हैं, द्वेष करते हैं। जीवन में एक समस्या का समाधान करते हैं तो समस्या दूसरे रूप में समाने आ खड़ी होती है। कभी रोग के रूप में, कभी अपने ही परिवार द्वारा अवमानना, अनादर के रूप में। किसी सन्त ने कहा है कि हम व्यवस्थित (सेटल) होने के लिए जीवन भर अव्यवस्थित (अनसेटल) रहते हैं। किसी परिस्थिति में हमारी सम्यक् प्रतिक्रिया क्या हो, उसके लिए एक जीवन दर्शन की आवश्यकता होती है। हमारे जीवन में हम दुःखी हैं क्योंकि हमारे पास न तो ऐसी दृष्टि है और परिस्थिति विशेष में किस प्रकार विचार करना है, वह भी हमें नहीं आता है।

हमें जीवन में सम्यक् दृष्टि या विचार करने की विधि वेदान्त से प्राप्त होती है। वेदान्त का अर्थ होता है, वेदों का अन्त माने अन्तिम भाग, सार, निर्णय, निष्पत्ति। वेदों की मुख्य विवक्षा को वेदान्त कहते हैं। वेदान्त को ही उपनिषद भी कहते हैं। वेदान्त का व्यवहार में विद्या पूर्वक ज्ञान पूर्वक उपयोग ही हमें समस्याओं से मुक्त कर सकता है।

एक ही सृष्टि होने पर भी सबका व्यवहार व प्रतिक्रिया अलग-अलग दिखती है। इसका कारण है सबका जीवन दर्शन अलग होना। व्यवहार या प्रतिक्रिया का आधार हमारी दृष्टि या दर्शन ही होता है। ये सम्यक् दृष्टि वेदान्त द्वारा प्राप्त होती है। कुछ बिन्दुओं के माध्यम से हम वेदान्त दृष्टि को समझने का प्रयास करेंगे।

(1) एकत्व/अद्वैत– हमें सृष्टि नाम, रूप, जड़, चेतन, गुण, दोष मय दिखती है। ये अनेकता इस सृष्टि की विशेषता है। वेदान्त कहता है कि इस अनेक नाम-रूपों में न आता हो, पर सत्य यही है। जिस प्रकार सारे विद्युत उपकरणों के पीछे एक मात्र बिजली (इलेक्ट्रीसिटी) ही है। दूसरी बात यह है कि वह एक तत्व ही अनेक रूपों में भासित हो रहा है। जिस प्रकार एक ही शक्कर से बने व्यंजन अनेक नाम रूपों से जाने जाते हैं। इस अनेकता में एक तत्व का दर्शन ही अद्वैत कहलाता है। इस अद्वैत दर्शन का व्यवहारिक जीवन में क्या प्रभाव होगा, इस पर विचार करने से पहले हम देखें कि अनेकता की दृष्टि का जीवन में क्या प्रभाव होता है?

जीवन में जब तक विविधता या भेद को ही देखते हैं तो किसी के साथ राग और किसी के साथ द्वेष होता है। इस दृष्टि से जब हम कर्म का व्यवहार करते हैं तो वह भी राग द्वेष पूर्वक होता है। भेद दृष्टि होने पर हम वस्तु को वैसा नहीं देख पाते जैसी वो वास्तव में है। परिवार में जब तक अद्वैत दृष्टि होती है तब तक कोई समस्या नहीं होती है। लेकिन जैसे ही भेद दृष्टि आती है तो दो सगे भाई कोर्ट में आकर लड़ते हैं। जब तक एकत्व भाव था, प्रेम था, तब किसी नियम की आवश्यकता नहीं थी। पर भेद दर्शन के बाद तो टोकाटाकी आदि सब होता है।

यदि अद्वैत दृष्टि हमें प्राप्त हो जाए तो व्यवहार का आधार राग-द्वेष नहीं रहेगा। एकत्व की दृष्टि रखने वाला मनुष्य सर्वभूत का हितैषी होता है, सबसे प्रेम करता है।

(2) सुख– वेदान्त का दूसरा सिद्धान्त यह है कि हम जिस सुख को बाहर ढूंढ़ रहे हैं, वह भीतर ही है। हमारी सारी चेष्टाओं का लक्ष्य सुख की चाह ही है। हम इसी सुख को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयास करते हैं, पर एक स्थान पर जाकर हमको लगता है कि वह सुख थोड़ा और दूर खिसक गया है। वह वहाँ नहीं है, जहाँ पहले दिख रहा था। जिस प्रकार रेगिस्तान में दूर से जो जल दिखता है, वह उस स्थान पर जाने पर थोड़ा और दूर दिखलाई देने लगता है।

इस प्रकार सुख पाने की ललक जीवन भर बनी रहती है। पर वह हर बार सरकता रहता है। वेदान्त के अनुसार जिस आनन्द को तुम खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर ही है और आगे बढ़कर कहे तो वह तुम ही हो 'तत्त्वमसि'। जिसने गुरु और शास्त्र प्रमाण से इस बात को समझ लिया, उसका भटकना बन्द हो जाता है। ऐसा साधक गोस्वामी तुलसीदास जी की भांति कहता है 'पायो परम विश्राम'। उसकी पराधीनता, दीनता समाप्त हो जाती है। वह जहाँ भी रहता है सबको आनन्दित करता है।

(3) स्वयं के बारे में मान्यता– यदि किसी व्यक्ति को कहे कि स्वयं को जानने के लिए वेदान्त श्रवण करो तो वह कहेगा कि क्या मैं स्वयं को नहीं जानता। मैं तो अपने को जानता हूँ। परन्तु यदि हम विचार करें तो ज्ञात होगा कि जो हम अपना परिचय कराते हैं, वो तो हमारे विशेषणों का, हमसे सम्बन्धित अन्य का ही परिचय होता है। हम अपना परिचय मेरा नाम, व्यवसाय, सम्बन्ध, जाति, देश, अवस्था आदि के आधार पर ही देते हैं। बिना इन सबके 'मैं' क्या हूँ, यह हमें मालूम ही नहीं और न कभी हमने इस पर विचार किया। इन सबको छोड़कर जो 'मैं' हूँ, वह मेरा वास्तविक स्वरूप है, जो आता-जाता नहीं। इसका वर्णन करना असंभव है, पर उसका अनुभव सबको है। क्योंकि हम वास्तव में वही हैं। जिस प्रकार किसी नाटक में भिखारी का अभिनय लम्बे समय तक करने के कारण एक समृद्ध अभिनेता को लगने लगता है कि वह भिखारी ही है। वह व्यवहार भी भिखारी की तरह करने लगता है और वैसे ही स्वप्न भी देखने लगता है। बस यही स्थिति हमारी है। माता, पिता, भाई, शिक्षक, धनवान, शिक्षित, रूपवान आदि का अभिनय करते-करते हमने स्वयं को ये ही मान लिया है।

जिसको ये ज्ञान हो जाता है कि ये तो मेरी औपाधिक पहचान है, किसी सन्दर्भ (रेफरेन्स) के साथ है। 'मैं' तो इन उपाधियों के बिना भी था और रहूँगा भी। तब उसके जीवन में असंगता आ जाती है। ऐसा व्यक्ति ही शुद्ध व्यवहार कर सकता है, सच्चे अर्थों में कर्तव्य पालन कर सकता है। अपने वास्तविक स्वरूप को न जानने वाले व्यक्ति के व्यवहार में राग द्वेष, पक्षपात अन्याय होगा।

भगवान शंकराचार्य जी कहते हैं कि अपने स्वरूप को जानने वाला ज्ञानी मौनियों में मौनी, गुणवानों में गुणी, मूर्खों में मूर्ख, बच्चों में बच्चा, भोगियों में भोगी, योगियों में योगी जैसा बन जाता है। माने अपनी सारी भूमिकायें अच्छी प्रकार से निभाता है, लेकिन स्वयं सबसे असंग रहता है। जो स्वयं के असली स्वरूप को जान लेता है, उसके जीवन में असंगता, पवित्रता, अभय आ जाता है।

(4) समत्व– वेदान्त से जीवन में समता आ जाती है। सम भाव का अर्थ है हर वस्तु के महत्व, स्थान, आवश्यकता, उपयोग और उसकी सीमा को समझना। वह जानता है कि जो कार्य मिट्टी से होना है, वह सोने से नहीं। जो कार्य भोजन से होना है, वह टीवी देखने से नहीं होता। सम भाव को प्राप्त हुआ साधक न तो किसी की उपेक्षा करता है और न किसी को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है। उसके जीवन में किसी का यथायोग्य स्थान होता है। जब हम जीवन में राग द्वेष के कारण किसी को अधिक या किसी को कम महत्व देते हैंतो जीवन में असंतुलन आ जाता है। इसे शास्त्रीय भाषा में अपराध कहते हैं। ऐसे व्यक्तित्व व्यवहार कभी श्रेष्ठ नहीं हो सकता। न वह स्वयं सुखी रहेगा और न किसी को सच्चा सुख दे पाएगा। अतः बिना किसी पूर्वाग्रह के समत्व के भाव के साथ हमको कर्तव्य कर्म करने चाहिए, व्यवहार करना चाहिए।

इस प्रकार हमने वेदान्त के निम्न सिद्धान्तों पर व्यवहारिक दृष्टि से विचार किया–

1) अद्वैत दृष्टि
2) अपने सुख स्वरूप को जानना
3) व्यवहार में असंगता
4) जीवन में समता

वेदान्त के ये सिद्धान्त हमारे व्यवहार में आ जावें तो हमारा व्यवहार निश्चित ही मधुर होगा और हमारा जीवन सार्थक होगा। इन्हीं सिद्धान्तों को हम साधना में भी प्रयोग करेंगे तो ये हमारी आध्यात्मिक यात्रा में भी हमको फल प्रदान करेंगे। प्रभु और गुरु कृपा से हम सबका जीवन वेदान्ती बने। सभी का स्वरूप व स्थान हो।

गुरु चरणों में समर्पित।

चिन्मय मिशन
ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य
मो.– 8707209996

मीमांसा दर्शन

आस्तिक दर्शनों की संख्या 421 है। मीमांसा दर्शन उनमें से एक है। वेद को प्रमाण मानने वाले को आस्तिक कहते हैं। इन दर्शनों में से मीमांसा का स्थान सर्वोपरि है। इसमें वैदिक वाक्यों को पूर्णतः प्रमाण माना गया है।

वेद के दो भाग हैं– कर्मकाण्ड और ज्ञान काण्ड। कर्मकाण्ड पूर्व मीमांसा का विषय है और ज्ञान कांड उत्तर मीमांका का प्रतिपाघ विषय है। पूर्व मीमांसा में वैदिक कर्मकाण्ड की पुष्टि की गयी है। वैदिक मंत्रों की योगपरक व्याख्या की गयी है। याग विद्या न का सुविस्तार वर्णन ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त होता है। परन्तु जैसे–जैसे वैदिक कर्मकाण्ड का प्रचार होता गया वैसे–वैसे याग विधान की समृद्धि भी होती गई। इससे कर्मकाण्ड सम्बन्धी अनेक समस्या में भी उपस्थित होती गयीं। उदाहरणार्थ क्या सभी वैदिक वाक्यों का सम्बन्ध याग से है? याग के अनुष्ठान के लिए किनकिनन अर्हताओं की आवश्यकता है? किस क्रिया का अनुष्ठान कौन व्यक्ति करेगा? कौन सा क्रिया मुख्य है और कौन सी उसका अंग है? अपूर्ण विधान वाले यागों की पूर्ति का क्या उपाय है? आदि प्रश्नों का समाधान मीमांसा में किया गया है। अस्तु हम कह सकते हैं– मीमांसा दर्शन मुख्य दो विषय हैं– कर्मकाण्ड की विधियों में असंगति दूर करने तथा संगति उत्पन्न करने के लिए व्याख्या पद्धति का निर्माण करना अैर कर्मकाण्ड के मूलभूत सिद्धान्तों का तर्क पूर्ण प्रतिपादन करना।

मीमांसा के सिद्धान्त का ज्ञान आवश्यक है। इसका प्रमुख सिद्धान्त है वेद को प्रमाण मानना। सांख्य, योग, न्याय और वैशेषिक दर्शन भी वेद को प्रमाण मानते हैं तथा आस्तिक भी है, परन्तु मीमांसा के समान नहीं। अस्तु मीमांसा सर्वोपरि आस्तिक दर्शन है।

वेद का प्रतिपाद्य विषय धर्म है। जिसके लिए यज्ञ आदि का विधान है। मीमांसा का मुख्य विषय भी धर्म है। धर्म का ज्ञान कैसे हो, इसके प्रमाण क्या हैं? इन विषयों का वर्णन मीमांसा में अधिक हैं। यद्यपि मीमांसकों का प्रयोजन तो धर्म की व्याख्या करना है, परन्तु इसकी व्याख्या के किए मीमांसक, 'प्रमा' और 'प्रमाण' की पर्याप्त चर्चा करते हैं। प्रमा और प्रमाण का इतना अच्छा विवेचन न्याय दर्शन के बाद मीमांसा में ही है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार मीमांसा का महत्व धर्म की व्याख्या तथा ज्ञान सिद्धान्त दोनों के लिए है।

'प्रमा' दोष रहित यथार्थ ज्ञान को 'प्रमा कहा जाता है।

'प्रमाण' 'प्रमा' के कारण का नाम 'प्रमाण है।

यह मीमांसा दर्शन का संक्षिप्त परिचय है।

– पं. चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी

अध्यक्ष–मानस समाज, कारगिल पार्क, सीपरी बाजार, झाँसी।

मुमुक्षुत्व

शंकराचार्य भगवान ने यह पूछने पर कि संसार में सबसे बड़ा रोग क्या है? उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि– संसार ही सबसे बड़ा रोग है। यानि बार–बार जन्मना, बार–बार मरना फिर ईश्वर कृपा से मनुष्य योनि पाकर नवीन शुभाशुभ कर्मों का होना और नवीन वासनाओं का जुड़ना, इस चक्र का चलना। यह जीवन चक्र ही जीव की गति रहती है। पुनः जिज्ञासु के पूछने पर कि इस चक्र से मुक्ति का भी कोई उपाय है क्या? तब उत्तर था– 'विचार एव।'

हम सत्संग के द्वारा उत्पन्न विचारों से केवल सत्य के ही पक्षधर हो जाते हैं। संतों से सुने हुए उपदेश से यह जान लेते हैं कि केवल परमात्मा ही सत्य है। इस संसार में जो कुछ भी इन्द्रियों से जानने में आ रहा है, वह सब असत्य है, रहने वाला नहीं है और संसार की किसी भी वस्तु से हमें शाश्वत् स्थायी शान्ति नहीं मिलती। हमारे अन्दर किसी एक वस्तु की इच्छा होती है और संसार में कठिन परिश्रम से उसकी पूर्ति करते हैं। उसकी पूर्ति होते–होते अगली आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। इसी क्रम में एक न एक कामना लगी ही रहती है और उसकी पूर्ति के लिए शास्त्रोक्त अथवा शास्त्र विरुद्ध कार्यों से हमारा जीवन आशा तृष्णा में ही निकल जाता है, अन्त में केवल पछतावा ही हाथ रहता है। पौराणिक शास्त्रों के स्वाध्याय से पता चलता है कि हमारे ऋषि मुनियों ने इस पर बहुत किया है और वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि संसार में जितनी भी भोग्य सामग्री है, वह एक व्यक्ति की भी सम्पूर्ण वासना पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए कामनाओं, वासनाओं की पूर्ति में सुख नहीं अपितु उनके त्याग में ही सुख है। अतः यथा सम्भव कम से कम सामग्रियों में अपना जीवन–यापन करना चाहिए। यह विचार ही वैराग्य भाव का जनक है। वैराग्य का अर्थ है कि सामर्थ्य के अनुसार आवश्यक वस्तु का उपयोग तो करना किन्तु किसी से बंधना नहीं। इस प्रकार से वैराग्य के बाद ही यह वैराग्य उपजता है।

इस प्रकार वैराग्य के पश्चात् हमारे अन्दर षट् सम्पत्ति का उदय होता है। जो हमारे वासनिक सुख का साधन है। षट् सम्पत्ति में–

प्रथम– शम है यानि मन से वैराग्य अर्थात् मन पर नियंत्रण।

द्वितीय– दम यानि इन्द्रियों पर नियंत्रण। सारी पृथ्वी का शासक कोई भले ही बन जाए लेकिन जो सुख इन्द्रिय विजेता को है उसकी कोई तुलना नहीं है। इसीलिए संत महापुरुषों को स्वामी कहा जाता है। अगर कोई वास्तव में स्वामी बन गया है तो उससे बड़ा कोई सुखी नहीं हो सकता।

तृतीय– उपरति यानि जीवन में कर्मों से वैराग्य क्योंकि जीवन में ज्यादा कर्मों का बाहुल्य हमें बांध लेता है।

चतुर्थ– तितिक्षा शरीर से वैराग्य यानि सहनशीलता। किसी भी परिस्थिति में शरीर को रखने की, सहन करने की सामर्थ्य।

पंचम– श्रद्धा, संत महापुरुषों, गुरु वाक्यों एवं वेद वाक्यों पर श्रद्धा कि वही सत्य है।

षष्ठम्– समाधान, आत्म तत्व का विचार ही समाधान है।

तत्पश्चात् मुमुक्षा– मोक्ष की इच्छा।

यानि पुनरपि जन्मम्, ुनरपि मरणम्। पुनरपि जननी, जठरे शमनम्।।

इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिये सदैव श्रोतिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की आवश्यकता होती है और वह उसे मिल जाते हैं, तो उसे ऐसा लगता है जैसे कि उसे सब कुछ मिल गया। सद्गुरु को पाकर शिष्य धन्य हो जाता है एवं जिज्ञासु शिष्य को पाकर गुरु अपने को धन्य मानता है। उदाहरण के तौर पर स्वामी रामकृष्ण परमहंस को विवेकानन्द मिले तथा स्वामी विवेकानन्द जी को भगनी निवेदिता मिलीं। जब स्वामी विवेकानन्द जी का भगनी निवेदिता ने प्रवचन सुना और उनकी मुमुक्षता जाग्रत हुई, तब उन्हें सारी रात्रि नींद नहीं आयी। विवेकानन्द जी के इस कथन "अगर मुझे तीस समर्पित व्यक्ति मिल जायें तो संसार का नक्शा ही बदल दूँ" का स्मरण करते हुए प्रातः गुरु चरणों में स्वयं को समर्पित करते हुए कहा– उनतीस की बात तो आप जानो, एक मैं तो अपने आपको आपके चरणों में समर्पित करती हूँ। आप मुझे अपनी शरण में लें। इसी प्रकार गार्गी ने भाव विभोर होकर याज्ञवल्क्य जी के लिए उद्गार प्रकट किए कि "मुझे आज उपनिषद झूठे लग रहे हैं। जिनमें कहा गया है कि ब्रह्म बोलता नहीं है, वह दिखाई नहीं देता, अब मैं अपने सामने साक्षात् ब्रह्म का दर्शन कर रही हूँ।" गुरु के प्रति इस प्रकार की श्रद्धा का आना ही गुरु भक्ति है।

गुरु मिल जाने पर वह लखाते हैं कि वह ब्रह्म तुम ही हो और वह ब्रह्म का दर्शन अपनी आत्मा में अपने 'मैं' के रूप में करता है। जिज्ञासु अपने अब्धि अपार स्वरूप का अपने 'मैं' के रूप में अनुभव करने लगता है और फिर उसे संसार में कुछ भी पाना अथवा जानना शेष्ज्ञ नहीं रहता। इसी का नाम ब्राह्मी स्थिति है। ब्राह्मी स्थिति प्राप्त होने पर फिर संसार में पुनरागमन नहीं होता।

–प्रमोद कुमार गुप्ता
झाँसी

शास्त्रों और शास्त्रज्ञों का जीवन में महत्व

उपनिषदों के उत्कृष्ट विचारों का अध्ययन और चिन्तन करने से साधक का हृदय हर क्षण उत्साहित रहता है। हमारे शास्त्रों में ही यह सामर्थ्य है कि इनका अध्ययन करने वाले की दृष्टि व्यापक हो सके। उपनिषदों में ऋषियों द्वारा बताया गया जीवन–विधान हमें निष्ठापूर्वक स्वीकार कर उसी के अनुसार जीना होगा। विषय, उद्वेग और विचारों के जगत में मन–बुद्धि को विक्षेपों से अधिकाधिक बचाकर सावधानीपूर्वक अपनी शक्तियों को संचित रखना होगा।

यदि हम अपने अहं और अपने स्वार्थ की कामनायें परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दें और समस्त जगत के हित में कार्य करें तो हमारी वासनाओं के भण्डार का क्षय हो जायेगा और हम आसक्तियों से मुक्त हो सकेंगे।

शास्त्रों के और शास्त्रज्ञों के, सम्पर्क में रहने वाले स्त्री पुरुष ही विवेकी होते हैं।

योगवशिष्ठ रामायण के, स्थिति प्रकरण के, 32वें सर्ग के, 40वें श्लोक में रघुवंश कुलगुरु वशिष्ठ जी ने, श्रीराम जी को, शास्त्र ओर शास्त्रज्ञ के सम्पर्क का फल बताते हुये कहा कि–

'सच्धास्त्रसाधुसम्पर्कमर्कमुग्रप्रकाशदम्।'
ये श्रयन्ते, ते न यान्ति, सोहाध्यस्य पुनर्वशम्।।

वशिष्ठ जी ने कहा कि– हे राघव! हे दशर्राथ राम! जो स्त्री–पुरुष, शास्त्र और शास्त्रज्ञ रूपी सूर्य के प्रकाश के सम्पर्क में रहते हैं वे स्त्री–पुरुष, पुनः मोहान्धकार के वशीभूत नहीं होते हैं। ज्ञानाधार तो एकमात्र शास्त्र ही होते हैं। परम्परा से शास्त्रों का अध्ययन करने वाले साधु पुरुष ही, शास्त्रों के सत्य मार्ग के शोधक अन्वेषक होते हैं। जिन स्त्री–पुरुषों ने शास्त्रों का तथा शास्त्रज्ञ विद्वान महापुरुषों का संग नहीं किया है उन महानुभावों को कर्तव्य–अकर्तव्य, भक्ष्य–अभक्ष्य का ज्ञान तथा विवेक कदापि नहीं हो पाता है।

भगवान, ईश्वर, भक्ति आदि शब्दों का श्रवण भी, शास्त्रों के भाषण से ही होता है। शास्त्र श्रवण विहीन स्त्री–पुरुषों का जीवन एकमात्र भोजन एकत्रित करने में ही व्यतीत हो जाता है। भोगमय, भोजनमय वृत्ति की उत्पत्ति ही नहीं हो पाती है। जो उनके अपार दुःखों का कारण होती है। सुख की अनुभूति नहीं कर पाते।

सच्छास्त्रसाधूसम्पर्कमर्कमुग्रप्रकाशदम्।

इस श्लोक में 'सच्छात्र' शब्द का प्रयोग किया गया है।

सत् अर्थात् शुद्ध। जिन शास्त्रों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सम्बन्धी कल्याणकारी जानकारी का उपदेश हो, उनको 'सत् शास्त्र' शब्द से कहा जाता है। जिन शास्त्रों के अध्ययन से और श्रवण से मनुष्य के हृदय में दया, परोपकार, क्षमा, सत्य सहित मोक्ष प्राप्ति की कामना उदित होती है, उन शास्त्रों को ही 'सत् शास्त्र' शब्द से कहा जाता है।

जो अनुशासित करता है, नियन्त्रित करता है, उसे ही शास्त्र कहते हैं। जैसे– धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र तथा मोक्ष शास्त्र, इन शास्त्रों को ही शास्त्र शब्द से कहा जाता है। अन्यत्र भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि सर्वत्र जो शास्त्र शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह गौण शब्द है।

धर्म और मोक्ष, ये दो मार्ग ही मानव जाति के लिये मंगलमय और कल्याणकारी मार्ग हैं। धर्म, प्रवृत्ति मार्ग है और मोक्षशास्त्र, निवृत्ति अर्थात् त्यागमार्ग है। दोनों मार्गों के ज्ञान के लिये, विधि के लिए, शास्त्रों की आवश्यकता है। बिना शास्त्रों के, प्रवृत्ति मार्ग कुमार्ग है, तथा बिना शास्त्रों के, निवृत्ति मार्ग भी निरुद्देश्य परिश्रम मात्र है।

जो स्त्री–पुरुष धर्म और मोक्ष को नहीं मानते, उनमें निश्चित ही सद्गुणों की कमी होती है और उनका स्वतंत्र आचरण होता है। मनवांछित एवं स्वतंत्र आचरण के कारण न भोजन नियंत्रित होगा और न ही भोग नियंत्रित होगा।

जिनका भोग और भोजन ही नियंत्रित नहीं होता, उन लोगों की जिह्वा और भोगेन्द्रिय एकमात्र विनाशक ही सिद्ध होती है। यही कारण है कि आज के समय में इतना व्यभिचार बढ़ता जा रहा है।

सत् शास्त्र से, भोगेन्द्रिय के नियंत्रण से, व्यभिचार, अत्याचार तथा कदाचार नियन्त्रित होता है। सत् शास्त्र से भोजनेन्द्रिय, जिह्वा के नियंत्रण से स्वास्थ्य, आरोग्य तथा इन्द्रिय बल, आत्म-बल, मनोबल की प्राप्ति होती है। जिन स्त्री–पुरुषों पर अपना स्वयं का नियंत्रण नहीं होता अर्थात् जो स्त्री–पुरुष शास्त्रों के नियंत्रण में नहीं चलते हैं, उनका शारीरिक बल, मनोबल तथा आत्मबल, तीनों ही निर्बल होकर अतिशीघ्र ही विनाश की ओर ले जाते हैं।

इसलिए सत् शास्त्र का सम्पर्क, अवश्य ही होना चाहिए। सत् शास्त्र साक्षात् सूर्य है। सत् शास्त्रज्ञ शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान सद्गुण सम्पन्न महापुरुष भी सूर्य के समान है।

ये श्रयन्ते ते न यान्ति मोहान्ध्यस्य पुनर्वशम्।।

ये अर्थात् जो मानव शास्त्रों की आज्ञानुसार अपने सभी प्रकार के कर्म करेंगे, शास्त्रों

का आश्रय लेकर, जीवन चर्या संचालित करते हैं, उनका फल ये है कि–

न यान्ति मोहान्ध्यस्य पुनर्वशम्।

अन्ध को ही 'अन्ध्य' शब्द से कहा जाता है। शास्त्रों का आश्रय लेकर कर्म करने वाले व्यक्ति मोह के अन्धकार में पुनः प्रविष्ट नहीं होते हैं, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।

केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो बुद्धि से युक्त होने के कारण अपनी परिच्छिन्नताओं को, बन्धनों को, अपूर्णता को जान पाता है और स्वभाविक होकर ही इन सब बन्धनों से मुक्त होकर पूर्णत्व पाने की इच्छा करता है। वह देह के नश्वर स्वभाव से ऊपर उठकर अमृतत्व की कामना करता है। इस कामना की पूर्ति अर्थात् अज्ञान की निवृत्ति केवल ज्ञान द्वारा ही हो सकती है। जिसके लिए प्रमाण (ज्ञान का साधन) है– वेदान्त अर्थात् उपनिषद् शास्त्र।

उपनिषदों के उत्कृष्ट विचारों का अध्ययन और चिन्तन करने से साधक का हृदय हर क्षण उत्साहित रहता है। हमारे शास्त्रों में ही यह सामर्थ्य है कि उनका अध्ययन करने वाले की दृष्टि व्यापक हो सके। अतः वेदों के अन्तिम भाग, जिसे उपनिषद् कहते हैं, को नित्य पढ़ना चाहिए।

इस संसार में बिना शास्त्रों के भी प्रत्येक कर्म तो होते ही हैं। दुःख भी प्राप्त होते हैं। प्रत्येक कर्म को यदि व्यवस्थित, आयु और समय के अनुसार करेंगे तो यश, धन तो प्राप्त होगा ही, साथ–साथ मोक्षमार्गी भी हो जायेंगे। अन्यथा एकमात्र दुःख, व्याकुलता, कलह, असंतोष तथा रोग और दुःखमय जीवन व्यतीत करना पड़ेगा।

सत्पुरुषों का ज्ञान हमारे अन्दर अवतरित हो, इसके लिए उनके साथ रहना आवश्यक है। किन्तु केवल शारीरिक निकटता या उनके प्रति भावुक रुझान पर्याप्त नहीं है। हमें उनके साथ एकात्मकता करनी होगी। इसके लिए हमें उनके सिद्धान्तों को समझना और उनके व्यवहार का अनुकरण करना होगा। इस प्रकार हमारा आन्तरिक व्यक्तित्व व्यापक और गहन बनेगा और हम उच्च स्तर का जीवन जीने योग्य बनेंगे। बड़े सौभाग्य से ही किसी को कभी सत्पुरुष, आध्यात्मिक ज्ञान में परिनिष्ठ सन्त मिलते हैं। ऐसे पुरुष संसार में थोड़े ही हैं। इस कमी को पूरा करने का उपाय है उनके द्वारा लिखे साहित्य का अध्ययन करना और उनके प्रवचनों को सुनना।

अतः शस्त्रों का अध्ययन करने से एवं शास्त्रज्ञों के अनुसार आचरण करने से व्यक्ति का दिव्य स्वरूप प्रखर हो जाता है।

– डॉ. रंजना शर्मा
नोएडा

नाम जप

रमे रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्त्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।।

भगवान् शिव माता पार्वती से कहते हैं कि प्रभु श्रीराम का एक बार भी हृदय से, भाव से नाम लेना एक हजार नामों के तुल्य है।

प्रसिद्ध है कि भगवान का नाम भगवान से भी बढ़कर है। भगवान सच्चिदानन्द स्वरूप, अनन्त असीम हैं। उनकी महिमा, लीला, धाम, चरित्र सभी अनन्त गुणा हैं, मंगलकारी है। सभी सद्‌गुण प्रभु में निवास करते हैं। सभी सन्त, भक्तों का मत है– भगवान का नाम सभी सौभाग्य की खान है। भक्ति–वैराग्य–शम–दम–दान आदि अनेक साधन भगवान के नाम के अधीन रहते हैं। इस भयानक संसार रूपी समुद्र से पार उतरने के लिए श्रीराम नाम नाव है। जिन्होंने राम नाम का आश्रय लिया, उनके समान कोई बड़भागी, भाग्यवान नहीं है। अनेकों दुष्कर्मी, खल भगवान के नाम के प्रचण्ड प्रताप से तर गये और उनकी बुद्धि को विकारों ने स्पर्श नहीं किया। भगवान नाम कल्पवृक्ष है; यह अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों फलों को देने वाला है। प्रभु का श्रीनाम प्रेम और परमार्थ अर्थात् भक्ति–मुक्ति का सार है।

"प्रेम को मूल नाम है।"

भगवान के प्रेम, भक्ति का रंग तो उसी पर चढ़ा, जो नाम जप के रस में मग्न है।

जब तक जीव नाम नहीं जपता, तब तक तीनों तापों से जलता ही रहेगा। उसे इस संसार में जन्म–जन्म और युग–युग में रोना ही पड़ेगा। राम नाम के समान पतितों को पावन करने वाला दूसरा कौन है। राम नाम पर वैसा ही भरोसा करो, जैसा मछली का जल से होता है।

कबीरदास जी कहते हैं–

जबही नाम हिरदे धरा, भया पाप का नाश।
मानों चिंगारी आग की, परी पुरानी घास।।

जिस प्रकार अग्नि की चिंगारी पुरानी घास पर पड़ते ही घास जल जाती है, इसी पकार ईश्वर का नाम लेते ही सारे पाप दूर हो जाते हैं। सभी सन्तजन को भगवान नाम के अनमोल रत्न का खजाना लुटाते चलते हैं; इसको लूट लो, भगवान के नाम का स्मरण करो।

लूट सके तो लूट ले, सन्त नाम की लूट।

भगवान का नाम 'निर्गुण' और 'सगुण' दोनों का बोध कराने वाला है।

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभासी।।

नाम का अर्थ निर्गुण का बोध कराता है और उसके अक्षर सगुण ब्रह्म का बोध कराते हैं। नाम को भगवान से भी बड़ा इसलिए कहा गया क्योंकि यह चतुर दुभाषिये की तरह भ्भगवान के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूपों की पहचान कराने की सामर्थ्य रखता है।

तुलसीदास जी कहते हैं– ऐसे भगवन् नाम को अपनी जिह्वा पर धारण करो, इससे भीतर और बाहर प्रकाश होगा।

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहु, जौ चाहसि उजियार।।

द्वार की देहली पर दीप रखने से अर्थात् जीभ से राम नाम उच्चारण करने से भीतर–बाहर दोनों ओर उजेला बना रहता है।

भगवान श्री कृष्ण गीता जी में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन करते हैं–

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्ध्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थाथी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

राम भगत जग चारि प्रकाश। सुकृति चारिउ अनद्य उदारा।।
चहु चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि विसेषि पिआरा।।

चारों ही प्रकार के भक्त पुण्यात्मा, निष्पाप, उदार और चतुर है। चारों ही भगवन् नाम के आश्रय को धारण किये रहते हैं।

ज्ञानी भक्त इस नाम को जीभ से जपते हैं–

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।।
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।।

ज्ञानी प्रपंच से विरक्त रहते हैं। विषय विलास से विराग होना ही जागना है।

जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा।।

ऐसे विराग की रक्षा जीवन से राम नाम जप करने से होती है। नाम जप से ही जगत से विलक्षण, अनुपम ब्रह्म सुख की अनुभूति होती है। जो ब्रह्म है, वही सुख है, उसका अनुभव नाम जप के काल में ही ज्ञानी करता है।

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।।

जिज्ञासा भक्त के लिए कहते हैं–

जाना चहहिं शूद्र गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।।

अध्यात्म, साधना विष्ज्ञयक अनेक गूढ़ विषय नाम जप के प्रभाव से सरलता से समझ्ञ आ जाते हैं।

जगत्–जीव–ईश्वर, बन्धन–मोक्ष आदि के विषय में प्रश्न बड़े गूढ़ है। इन्हें जो जानना चाहते हैं वे ही गूढ़ गति के जिज्ञासु हैं। इनके लिए भी साधना जिह्वा से राम नाम का जप है। नाम की लौ लगने से गूढ़ तत्व अपने आप हृदय में प्रकाशित हो जाता है। स्वभाव से ही सबको ज्ञान रहता है, पर वह अज्ञान से ढँका रहता है। जिज्ञासु भक्त नाम जप से अज्ञान का नाम करता है।

भगवान् वेत्र नाम का जप सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

साा‍ध्क नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ।।

अर्थाथी भक्त पूरी एकाग्रता, तन्मयता से नाम जप के द्वारा अपनी मनोकामना को पूर्ण होता हुआ पाते हैं।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।।

ध्रुव जी ने नाम जप से अचल, ध्रुव पद प्राप्त कर लिया।

आर्त भक्त के भारी से भारी संकट, कष्ट को हरने की सामर्थ्य नाम में है।

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।।

नाम जप बड़े से बड़े भारी पीड़ा, कष्ट का निवारण कर साधक को सुख पहुँचाता है।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ।।
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

जो हर प्रकार से साधन रहित हैं, प्रभु नाम ने उन अधमों का भी कल्याण किया है। स्वयं भगवान भी अपने नाम की बड़ाई, महिमा का वर्णन नहीं कर सकते। भगवान अपने नाम के आधीन हो, अपने भक्तों के वश में रहते हैं।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।

कलियुग में इस नाम जप से बढ़कर कोई दूसरा साधन हीं है।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ।।

नाम को जपकर जीव हर देश–काल–परिस्थिति में शोक रहित हो, परम आनंद को प्राप्त करते हैं। नाम जप सबसे श्रेष्ठ साधन है एवं सभी साधनाओं का प्राण है।

राम नाम अबलंबन एकू।

– गार्गी चैतन्य
चैतन्य मिशन, सतना

शब्द की शक्ति

प्राचीन समय में जब शब्दों का अस्तित्व उत्पन्न नहीं हुआ था, तब कैसा लगता रहा होगा? यह कल्पना करने पर अनुभव होता है कि उस समय जिन्दगी की कारगुजारी अत्यन्त मुश्किल होती रही होगी। वस्तुओं की आवश्यकता के अनुसार स्वतः ही नामों का अस्तित्व पैदा हुआ होगा। धीरे-धीरे समय के साथ-साथ शब्दों को सँवारा तथा सही स्थान दिया जाता रहा होगा। कई शताब्दियों के पश्चात् मनुष्य-विकास रूपी वृक्ष की जड़ों से शुद्ध शब्द रूपी फल लगे होंगे तथा लगते रहे। शब्दों के बिना इंसानकी जिन्दगी अधूरी है।

शब्द ही है, जो मनुष्य और समाज को एक-दूसरे के साथ जोड़ते हैं। शब्द-शक्ति के बिना मनुष्य की जिन्दगी सफेद कागज की तरह है। अक्षरों के बिना मनुष्य की जिन्दगी उस मरुस्थल की भाँति है, जिसमें कोई नदी नहीं है। शब्दों के बगैर मनुष्य की जिन्दगी गूंगे की जुबान की तरह है। शब्दों के बगैर मनुष्य पशु-समान है। आध्यात्मिक लोग शब्दों की शक्ति समझने में समर्थ होते हैं। शब्द कभी मरते नहीं। इनके अर्थों का सन्देश दिमाग में कीटाणुओं की तरह प्रवेश करके असर करता है। आपने देखा होगा कि जब हमें कोई अभिवादन की मुद्रा में झुककर सलाम करता है, तो उसका सन्देश इतना विनम्र तथा शान्त होता है कि समस्त शरीर खिल-सा जाता है। यह सब शब्दों की शक्ति की बदौलत ही तो है।

अगर कोई मनुष्य, जो आपका दुश्मन है या विरोधी है, जो आपको घूरकर, माथे पर बल डालकर देखता है तथा आपके प्रति बुरे शब्दों तथा गन्दी गालियों का प्रयोग करता है, तो निश्चय ही, उन गन्दे शब्दों के सन्देश के कीटाणुओं का असर दिमाग पर बुरा होगा, दिमाग में यह सन्देश प्रवेश करते ही आपका मन अत्यन्त दुखी होगा तथा आप उन गन्दे शब्दों के विपरीत विरोध खड़ा कर सकते हैं। ऐसा करते हैं आप? आपने कभी ध्यान से सोचा? आध्यात्मिक पुरुष, साधु, फकीर, सन्तुलित दिमाग के स्वामियों पर शब्दों के सन्देश इतनी जल्दी असर नहीं करते। वे शब्दों के संन्देश अपनी चेतनता तथा समझ के साथ विचारते हैं। काफी समय बाद उनके असरको तोलकर फैसला लेते हैं। तेजस्वी शब्दों का असर भी तीव्र होता है। जिससे मनुष्य के विचारों तथा सोच में परिवर्तन आ जाता है। सन्तुलित मस्तिष्क के लोगों में विरोधाभास की अग्नि इतनी तेजी से उत्पन्न नहीं होती। वे शब्दों की मिसाइलों को अपने संतुलन की मिसाइलों के साथ मस्तिष्क में प्रवेश होने से पूर्व ही नष्ट कर देते हैं। मिसाइलों की भाँति शब्द भी दिमाग में प्रवेश करके तोड़-फोड़ तथा बर्बादी पैदा करते हैं।

समस्त धर्मों का अपना मंगलाचरण तथा धार्मिक प्रतीक-चिह्न होता है। परमात्मा (रब) की प्रकृति के अस्तित्व का प्रतीक जैसे एक ओंकार, ओम् इत्यादि। इन शब्दों का दिमाग में प्रवेश होना ही मंगलमय होता है। लोगों को इन अक्षरों को सुनते ही एक शान्ति-सी शरीर में लहर जाती है। रब, ईश्वर, अल्लाह, भगवान् इत्यादि का अस्तित्व भी तो शब्दों की बदौलत ही है। शब्द न हों तो रब, ईश्वर इत्यादि के अस्तित्व का-सृष्टि की रचना करने वालेके अस्तित्व का पता ही न चलता। उसको किस नाम से, कैसे सम्बोधित करते?

यह सब शब्द की ही करामात है। प्यार के शब्दों से अपनत्व जबकि घृणामूलक शब्दों से दुराव पैदा होता है। बहुत से लोग शब्दों की शक्ति से परिचित ही नहीं। उन्हें शब्द-शक्तिकी समझ ही नहीं। वे तो दैनिक जिन्दगी में दिन-रात इतने व्यस्त हैं कि उन्होंने इस बारे में कभी सोचा ही नहीं। घरेलू झगड़े, युद्ध, तकरार, ईर्ष्या इत्यादि शब्दों की शक्ति की बदौलत ही तो

हैं। प्रेम, श्रद्धा, आध्यात्मिकता सबका स्रोत तो शब्द ही है।

इनकी अभिव्यक्ति शब्दों से ही की जा सकती है। जो लोग शब्दों की शक्ति को समझ लेते हैं, वे बहुत कम दुखी होते हैं। जिससे उनका सन्तुलन बरकरार रहता है तथा वे विपरीतार्थी शब्दों का असर ग्रहण नहीं करते। अन्ततः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शब्दों की शक्ति को समझना ही जीवन है। जिसके पास यह चाभी है, वह प्रत्येक तरह के दिमागी तालों को खोल सकनेकी सामर्थ्य रखता है। इसीलिये कबीरदासजी कहते हैं–

'बोली एक अमोल है, जो कोई बोले जान।'

– अरविन्द देवलिया

दो अंगुल बंधन का रहस्य

ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात। जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात।।

भावार्थ– मैं ब्रह्मलोक तक गया और जब उड़ते हुए मैंने पीछे की ओर देखा, तो हे तात! श्री रामजी की भुजा में और मुझमें केवल दो ही अंगुल का बीच था।

रामचरितमानस में जब प्रभु की भुजा कागभुसुंड जी को पकड़ने दौड़ी तो वह भुजा सदा मात्र दो अंगुल के अन्तर से पीछे रही और वृन्दावन में जब यशोदा मैया नटखट भगवान् श्यामसुंदर को बाँधने की कोशिश करती हैं तो सारे वृन्दावन की रस्सी भी मात्र दो अंगुल के फर्क से छोटी रह जाती है। जब भगवान् जी से पूछा गया की यह दो अंगुल का क्या रहस्य है तो वह मुस्कुराकर बोले एक अंगुल तो मेरी कृपा का है और दूसरी अंगुल जीव की इच्छा का है। जब तक जीव मुझे पकड़ने का प्रयास नहीं करेगा और फिर मै उस जीव पर कृपा नहीं करूँगा तो हमारा मिलन संभव नहीं होगा। अगर ईश्वर और भक्त एक दूसरे को पकड़ने का प्रयास नहीं करते तो जीव और ईश्वर का मिलन नहीं होगा।

ईश्वर को श्रीराम विवाह के समय माँ सीता की पंचरंगी चुनरी के छोर द्वारा बाँधा गया और फिर श्यामसुंदर भगवान् जब राधारानी के बरसाने से रस्सी मंगवाई गयी तो भी भगवान् बन्ध गए। जिस माँ की गोद में जाकर व्यापक ब्रह्म इतना छोटा हो गया उसके हाथ में अगर रस्सी भी आकर छोटी हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। माँ यशोदा के हाथ में रस्सी छोटी होने का कारण भगवान् श्यामसुंदर नहीं थे, क्योंकि भगवान् ने रस्सी से न बंधने के लिए अपने शरीर को तो बड़ा नहीं किया था, फिर माँ यशोदा क्यों नहीं बाँध पायी। इसका कारण एक तो क्रोध के कारण बांधना चाहती थी और दूसरी ओर प्रेम के कारण उन्हें बाँधने में संकोच हो रहा था इसी कारण रस्सी छोटी रह जाती थी। माँ के क्रोध और संकोच के कारण दो अंगुल का फर्क रहा। मन में अगर किसी प्रकार का संशय है तो ईश्वर को नहीं बाँधा जा सकता।

तात्पर्य यह है कि भगवान् भक्ति के बंधन से बन्ध सकते हैं। माता सीता और राधारानी भक्ति का स्वरुप है। एक बार भक्ति के बंधन में जकड़े जाने के पश्चात ईश्वर भक्ति देवी का ही अनुसरण करते दिखाई देते हैं। श्रीराम विवाह में माँ सीता की चुनरी से बंधे। श्री राम श्री सीता के पीछे–पीछे चलकर विवाह पूर्ण करते हैं। जो ईश्वर का पीताम्बर असीम है और जिसका कोई छोर नहीं है। जिसकी सीमा नहीं है। वह ईश्वर भी जब भक्ति की चुनरी के साथ बंधता है तो असीम हो जाता है और फिर वह पकड़ा जा सकता है..!!

मन की तरंगे

ॐ हरि तत्सत् शिवोऽहम् सोहम्। परम पूज्य गुरू महाराज ब्रह्मलीन स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी को सत्-सत् नमन। आपका आशिर्वाद सदैव हम पर बना रहे। शिवोऽहम्।

तरंगें केवल जल में नहीं होती, मन में भी होती हैं। मन की जो तरंगें होती हैं उनको ही दुःख-सुख, भय-चिन्ता कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में छः तरंगें अथवा लहरें होती हैं-जन्म, मरण, मान, अपमान, सुख, दुःख। मनुष्य के मन में ख्याल रहता है कि वह पैदा हुआ है तो कभी न कभी मर जायेगा। इन तरंगों को शान्त करने के लिए ही ध्यान का प्रयोजन है। इस तक पहुंचने में प्रकाश कुंडलनी, चक्र जागृति सहयोगी हैं। मनुष्य को चाहिए कि पहले तो ये लहरें उठे हीं न और यह असम्भव नहीं है। यदि लहरें उठती भी हैं तो उसे हम कितनी जल्दी रोक सकते हैं, इसका उपाय करना चाहिए। सुख-दुःख सबको होते हैं और नष्ट भी हो जाते हैं परन्तु साधारण मनुष्य उन्हीं में उलझा रहता है। सुख-दुःख ज्ञानियों को भी होते हैं परन्तु उसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे उसे मिटाना जानते हैं।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन को नियंत्रित करके और उसे सकारात्मक विचारों से भरकर एक आनन्दमय जीवन जी सकता है। मन को हम एकाग्र नहीं कर सकते अपितु एकाग्रता ही मन को एकाग्र की अवस्था में लाती है और हमारे एकाग्र चित्त की दशा ही अध्यात्म की ओर मुड़ती है। चित्त की एकाग्र अवस्था में समाधि होती है। इस अवस्था में सत्व गुण प्रधान होता है। एकाग्र अवस्था में वस्तु के सत्य स्वरूप का बोध हो जाता है। इस अवस्था में पंच क्लेश अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश क्षीण हो जाते हैं। जन्म-जन्मांतर के कर्म के बंधन ढीले पड़ जाते हैं। वह एकाग्र अवस्था संप्रज्ञात योग नाम से जानी जाती है।

अध्यात्म हमारे अज्ञान का निवारण करता है एवं हमारे चित्त में ज्ञान की प्रतिष्ठा करता है और जीवन को यथार्थ दृष्टि से देखने की क्षमता देता है। जिस मनुष्य के अन्दर ऐसी यथार्थ दृष्टि जाग्रत हो जाती है वह दुःख-सुख, भय-चिन्ता जैसी लहरों से मुक्त हो जाता है।

शिवोहम्।

– वैभव वर्मा

सम्पूर्ण विश्व भगवान की अभिव्यक्ति

सम्पूर्ण जगत आद्यतन भगवान की ही अभिव्यक्ति है। भगवान ही इस जगत के निमित्त कारण हैं और भगवान ही उपादान कारण हैं। सम्पूर्ण विश्व, भगवान में है और भगवान सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। वे विश्वातीत, सर्वातीत होने के साथ–साथ अनन्त सर्वरूप हैं। अपने सच्चिदानन्द स्वभाव के कारण ही वे अनन्त भावों, अनन्त कार्यों एवं अनन्त विभूतियों के द्वारा अपने को व्यक्त करते हैं। इस सृष्टि का प्रत्येक कण उनके परिपूर्ण स्वरूप से पूर्ण है। सारी सृष्टि उनका आत्म प्रकाश, आत्म विनोद और आत्म सम्भोग है।

प्रत्येक प्राणी भगवान का है और प्रत्येक प्राणी में भगवान स्वयं विराजमान हैं। इस नित्य आत्मैक्य को भूल जाने के कारण ही मनुष्य दुखी अशान्त और संतप्त रहता है। जब तक मनुष्य भगवान के इस नित्य सहज अभिन्न आत्म सम्बन्ध को नहीं जान लेगा तब तक वह सहज आनन्द स्वरूप होने पर भी अभाव के दुःखालय से दग्ध रहेगा।

संसार और संसार के प्राणि पदार्थ में कोई दोष नहीं है, दोष है मनुष्य की विषय वासना में, भोग कामना में और इन्द्रियासक्ति में। भोग सेवन में आसक्ति न हो, भोग सुख की कामना न हो तो प्रत्येक योग भगवान की पूजन सामग्री बन जाता है और फिर वह अपनी नगण्य सत्ता को भगवान की महान सत्ता में खो देता है। मनुष्य, सुख शान्ति तो चाहता है वरन् विपरीत मार्ग पर चला जाता है। समस्त सुखों की, शान्ति की प्राप्ति केवल भगवत् चरणों में सम्भव है जो मनुष्य सारी कामना स्पृहा तथा ममता अहंकार को भगवान में समर्पित कर भगवान का हो जाता है उसे तुरन्त सुख शान्ति मिल जाती है। परन्तु यदि वह भगवान को भूलकर केवल भोगों से ही सुख शान्ति चाहेगा तो उसे निराश ही होना पड़ेगा।

भगवान से रहित जितने भी योग हैं, भ्रमवश वे सुख रूप दिखाई दे सकते हैं पर परिणाम में उनसे दुख ही मिलेगा क्योंकि वे दुःखों को उत्पन्न करने वाले हैं।

दृष्टान्त– घर में आग लगने पर एक बड़ा सा प्रकाश दिखता है किन्तु परिणाम स्वरूप वह प्रकाश घर का नाशक होता है, उसी प्रकार भोग विलास भी मधुर तथा उल्लासमय प्रतीत होता है किन्तु परिणाम विषवत् और भयानक दुखप्रद होता है। तुम जो भोग पदार्थों को पाकर सुख का अनुभव करते हो वो बिल्कुल वैसा ही होता है जैसे कि शराब के नशे में व्यक्ति सबसे अधिक सुखी महसूस करता है। भले ही वो गंदी नाली में क्यों न पड़ा हो।

वस्तु की प्राप्ति वहीं होती है जहाँ वह होती है। बालू से तेल न हीं निकलता, सूर्य से अंधकार नहीं निकलता, चन्द्रमा से अग्नि नहीं निकलती, वैसे ही भगवान के बिना सुख शान्ति कहीं से मिल ही नहीं सकती क्योंकि और कहीं वह होती ही नहीं है। जो लोग भगवान में अटूट विश्वास रखते हैं उनके सुख सन्तोष को कोई छीन नहीं सकता है। सम्पूर्ण विश्व भगवान की अभिव्यक्ति है, उन्हीं के सम्पर्क में सभी प्रकार का सुख और सन्तोष है।

– कुमकुम बिसारिया

आचार्य शंकराचार्य और निर्वाणषट्कम्

आदि शंकराचार्य भारतीय दर्शन एवं धर्म के इतिहास में एक महान संत, विचारक और अद्वैत वेदांत के प्रवर्तक आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका जन्म केरल के कालड़ी नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम आर्यम्बा था। परंपरागत मान्यता उन्हें 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व का मानती है, किंतु अधिकांश आधुनिक विद्वान उन्हें 8वीं शताब्दी (लगभग 788–820 ईस्वी) का मानते हैं। शंकराचार्य बचपन से ही असाधारण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने मात्र आठ वर्ष की आयु में वेद और शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था। पिता का निधन उनके बचपन में ही हो गया था, और वे आरंभ से ही संन्यास लेना चाहते थे, किंतु माँ इसके लिए तैयार नहीं थीं। एक बार जब वह नदी में स्नान कर रहे थे, तब एक मगरमच्छ ने उनका पैर पकड़ लिया। शंकर ने माँ से संन्यास की अनुमति मांगी, और माँ की सहमति मिलते ही मगरमच्छ ने उन्हें छोड़ दिया। इसके बाद शंकराचार्य ने ओंकारेश्चर (मध्य प्रदेश) जाकर गोविंद भगवत्पाद से संन्यास दीक्षा ली। वहीं उन्होंने अद्वैत वेदांत का गहन अध्ययन किया और आगे चलकर समस्त भारत में अपने दर्शन का प्रचार–प्रसार करने के लिए वाराणसी से उन्होंने अपनी यात्रा प्रारंभ की।

आदि शंकराचार्य ने शास्त्रों का गहन अध्ययन करने के साथ–साथ तत्कालीन भारतवर्ष की सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिस्थितियों का भी सूक्ष्म अवलोकन किया। उन्होंने अनुभव किया कि संपूर्ण भारतवर्ष में विभिन्न प्रकार के मत–मतांतर, संप्रदायिक भिन्नताएँ, जातीय विभाजन एवं रुढ़िगत जटिलताएँ विद्यमान हैं, जिनसे सामाजिक एकता और आध्यात्मिक समरसता खंडित हो रही है। शंकराचार्य ने निर्णय लिया कि देश में व्याप्त वैचारिक और धार्मिक विविधताओं को एक सूत्र में संगठित किया जाना आवश्यक है। उन्होंने अद्वैत वेदांत के प्रचार–प्रसार को अपना जीवन ध्येय बना लिया। अपनी सांस्कृतिक एकता की साधना की यात्रा का प्रारंभ उन्होंने काशी (वाराणसी) से किया, जहाँ उनके विद्वत्तापूर्ण भाष्य एवं ग्रंथों की व्यापक चर्चा आरंभ हुई। शास्त्रार्थ की उनकी परंपरा ने देश भर के बौद्ध, जैन, मीमांसक तथा अन्य दार्शनिक मतों के विद्वानों को आकर्षित किया और उन्होंने अपने तर्क, विवेक एवं शास्त्रीय आधारों पर अद्वैत वेदांत की तात्विक श्रेष्ठता को स्थापित किया। उस काल में भारत धार्मिक विखंडन, संप्रदायिकता और जातीय भेदभावों से ग्रसित था। शंकराचार्य ने दर्शन के माध्यम से सनातन धर्म की विविध धाराओं को दार्शनिक आधार पर संगठित करते हुए सनातन धर्म को संगठित किया।

आदि शंकराचार्य के समय भारत का धार्मिक परिदृश्य विकृत एवं अराजक था। तांत्रिक अनुष्ठान, बलात्कारवाद, बलिप्रथा और अंधविश्वासों का बोलबाला था, जबकि वैदिक धर्म अपनी मूल प्रासंगिकता खोता जा रहा था। हिंदू धर्म अनेक पंथों जैसे– बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, वैष्णव, तांत्रिक, कापालिक, पाशुपत, आदि में विभक्त होकर दार्शनिक रूप से विचलित हो गया था। इस विघटनकारी स्थिति का समाधान करने हेतु शंकराचार्य ने देशभर में भ्रमण करते हुए

शास्त्रार्थों के माध्यम से विभिन्न संप्रदायों के विद्वानों को तर्क पूर्वक पराजित कर अद्वैत वेदांत की तात्त्विक श्रेष्ठता स्थापित की। उन्होंने कश्मीर, मिथिला, दक्षिण भारत व विदर्भ सहित अनेक क्षेत्रों में बौद्धाचार्यों, जैनाचार्यों, तांत्रिकों, कापालिकों और अन्य सम्प्रदायों के विद्वानों से संवाद किया। मंडन मित्र तथा उनकी विदुषी पत्नी भारती से हुआ शास्त्रार्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शंकराचार्य ने न केवल कुप्रथाओं और अंधविश्वासों का खंडन किया, बल्कि ब्रह्मसूत्र, उपनिषद और वेदांत सिद्धांतों को सरल एवं तार्किक भाषा में जनसामान्य के लिए सुलभ बनाया। उन्होंने धर्म के बाह्य आडंबर और कर्मकांडों की अति की आलोचना करते हुए आंतरिक साधना, ज्ञान और निःस्वार्थ भक्ति को धर्म का केंद्रीय स्वरूप घोषित किया। उनका कार्य केवल दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सांस्कृतिक आंदोलन बन गया जिसने भारत की विविधताओं को आध्यात्मिक एकता में रूपांतरित किया। तीर्थस्थलों, मंदिरों एवं सांस्कृतिक केंद्रों के पुनरुद्धार के माध्यम से उन्होंने धर्म को व्यवहारिक और लोक कल्याणकारी रूप में पुनर्स्थापित किया।

आचार्य शंकर द्वारा रचित लगभग 280 ग्रंथ प्राप्त होते हैं। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, उपनिषद (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक और छांदोग्य उपनिषद्), भगवद्गीता आदि पर भाष्य लिखे, और अनेक स्तोत्रों और ग्रंथों की भी रचना की। शंकर ने बहुत से छोटे अद्वैत ग्रंथों की रखना की है, जिन्हें प्रकरण ग्रंथ कहा जाता है। इन ग्रंथों का उपयोग अक्सर शुरुआती लोगों को पढ़ाने के लिए किया जाता है। शंकर ने बहुत से स्तोत्र (भजन) भी लिखे हैं। इनमें प्रसिद्ध 'भज गोविंदम' भजन से लेकर दक्षिणामूर्ति स्तोत्रम तक शामिल हैं। उनके ग्रंथों में विवेकचूडामणि, प्रबोध सुधाकर, उपदेशसाहस्री, अपरोक्षानुभूति, शतश्लोकी, दशश्लोकी, सर्ववेदान्तसिद्धांतसारसंग्रह, वाक्सुधा, पंचीकरण, प्रपंचसारतच, आत्मबोध, मनिषपंचक और आनन्दलहरीस्त्रोत्र आदि शामिल हैं।

आदि शंकराचार्य ने सनातन धर्म की स्थायित्व, एकता और बौद्धिक परंपरा को सुदृढ़ करने हेतु भारत के चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की, वेदों के प्रचार–प्रसार के निमित्त प्रत्येक मठ को एक वेद के अध्ययन–अध्यापन का दायित्व दिया। पूर्व में गोवर्धन पीठ, पुरी (उड़ीसा) के आचार्य पद्मपादाचार्य बनाए गए, यहाँ का वेद ऋग्वेद और महावाक्य प्रज्ञानं ब्रह्म है। पश्चिम में शारदा मठ, द्वारका (गुजरात) के आचार्य हस्तामलकाचार्य बनाए गए। यहाँ का वेद सामवेद और महावाक्य तत्त्वमसि है। उत्तर में ज्योतिर्मठ, बद्रीनाथ (उत्तराखंड) के आचार्य तोटकाचार्य बनाए गए। यहाँ का वेद अथर्ववेद और महावाक्य अयमात्मा ब्रह्म है। दक्षिण में श्रृंगेरी शारदापीठ, कर्नाटक के आचार्य सुरेश्वराचार्य बनाए गए। यहाँ का वेद यजुर्वेद और महावाक्य अहं ब्रह्मास्मि है। शंकराचार्य द्वारा स्थापित ये मठ सनातन धर्म की बौद्धिक, धार्मिक परम्परा के स्तंभ बन गए। मठों का कार्य वेद, उपनिषद और वेदान्त का प्रचार, धर्मशाखों की रक्षा और व्याख्या करना, सनातन परंपरा के अनुसार संन्यासियों को दीक्षा देना और उनका मार्गदर्शन करना, विभिन्न मठों के माध्यम से धर्म की एकता बनाए रखना और विविधता में समरसता का भाव जागृत करना है। शंकराचार्य ने अपने संन्यासियों के लिए एक विशेष

अनुशासित व्यवस्था का निर्माण किया, जिसे दशनामी संप्रदाय कहा जाता है। दशनामी का अर्थ है– दस नामों वाला संप्रदाय। इसके अंतर्गत उन्होंने दस उपाधियों की परंपरा प्रारंभ की जो संन्यासियों को उनकी योग्यता, क्षेत्र, कार्य और मठ परंपरा के अनुसार दी जाती थीं। ये दस उपाधियाँ गिरी, पर्वत, सागर, तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, भारती, पूरी, सरस्वती।

आचार्य शंकराचार्य ने वेदांत दर्शन के अद्वैत मत की स्थापना की, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'द्वैत का अभाव' अर्थात् केवल एक सत्ता का अस्तित्व। उनके अनुसार आत्मा (जीव) और परमात्मा (ब्रह्म) मूलतः एक ही हैं, उनमें कोई भिन्नता नहीं है। यह भेद केवल अज्ञान (अविद्या) और माया के कारण प्रतीत होता है, जिससे आत्मा स्वयं को ब्रह्म से पृथक अनुभव करती है। शंकराचार्य ने 'ब्रह्म सत्ये जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' का सूत्र प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और यह जगत माया के कारण उत्पन्न भ्रम मात्र है। ब्रह्म को उन्होंने नित्य, अपरिवर्तनीय, निराकार तथा सर्वव्यापक सत्ता के रूप में परिभाषित किया, जो इंद्रियों की सीमाओं से परे होते हुए भी समस्त सृष्टि में व्याप्त है। माया के सिद्धांत द्वारा वे यह स्पष्ट करते हैं कि माया ही वह शक्ति है जो ब्रह्म की एकता को छिपाकर संसार को विविध रूपों में प्रस्तुत करती है। जैसे अज्ञानवश रात में रस्सी को सौंप समझने का भ्रम होता है, वैसे ही अज्ञान के कारण जीव संसार को यथार्थ मानने की भूल करता है। शंकराचार्य के अनुसार जब आत्मा को यह बोध हो जाता है कि वह स्वयं ब्रह्म है, तब उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी आत्म–साक्षात्कार को उन्होंने 'अहं ब्राह्मास्मि' (मैं ही ब्रह्म हैं) के रूप में अभिव्यक्त किया, जो अद्वैत वेदांत का मूल लक्ष्य है।

निर्वाणषट्कम–

कथा के अनुसार, जब बालक शंकर शिक्षा ग्रहण करने गोविंदपादाचार्य के आश्रम पहुंचे, तब गुरु ने उनसे एक गूढ़ प्रश्न किया– तुम कौन हो? इस प्रश्न के उत्तर में शंकर ने तत्काल छह श्लोकों का एक लघु ग्रंथ रचा, जिसे 'निर्वाणषट्कम्' कहा जाता है। इस रचना में उन्होंने आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को स्पष्ट किया है, अर्थात् आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है। निर्वाणषट्कम् एक ऐसा स्तोत्र है। शंकराचार्य का यह प्रयास केवल शास्त्रज्ञ विद्वानों के लिए नहीं था, अपितु प्रत्येक साधक के लिए था, जो यह जानना चाहता है कि–मैं कौन हूँ? मेरा असली स्वरूप क्या है? यानी हम वास्तव में कौन हैं? इन सभी प्रश्नों का उत्तर आदि शंकर ने इस ग्रंथ में दिया है। उन्होंने आत्मा को धर्म, कर्म, जाति, लिंग, देह, चित्त एवं इंद्रियों से परे माना। यह समझ व्यक्ति को आंतरिक शांति, मुक्ति और आध्यात्मिक प्रगति की ओर अग्रसर करती है। यह स्तोत्र व्यक्ति को अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करने की प्रेरणा देता है और बताता है कि वास्तविक मुक्ति (निर्वाण) आत्मा की इस शुद्ध चेतना में स्थित होकर ही संभव है। सांसारिक आवरणों, वासनाओं और द्वैत–बुद्धि से परे जाकर ही आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को जान सकती है। शंकराचार्य ने आत्मा को 'चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्' कहकर ब्रह्म के साथ एकीकृत माना है।

मनोबुद्धयहंकारचित्तानि नाहम् न च श्रोत्र जिहे न च घ्राण नेत्रे
न च व्योम भूमिर्न तेजों न वायुः चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

मैं न मन, न बुद्धि, न अहंकार (स्वत्व का अभिमान) और न ही चित्त हूँ। मैं न तो श्रोत्र, न जिल्हा, न घाण, और न ही नेत्र हूँ। मैं न आकाश, न पृथ्वी, न अग्नि और न ही वायु हूँ। मैं शुद्ध चेतना एवं आनन्दस्वरूप, निर्गुण, निर्विकल्प शिवस्वरूप हूँ।

न च प्राण संज्ञो न वै प्चिंवायुः न वा सप्तधातुर्न वा प्चिंकोशः
न वाक्पाणिपादौ न चोपस्थपायू चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

मैं न तो प्राण हू और न ही शरीर में प्रवाहित होने वाली पंचवायु (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) में से कोई हूँ। मैं न तो शरीर की संरचना में विद्यमान सप्तधातुएं (रख, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) हूँ और न ही आत्मा को आवृत्त करने वाले पंचकोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय) हूँ। मैं न वाणी हूँ, न कर्मेन्द्रिय रूप में हाथ या पांव हूँ, और न ही उत्सर्जनेंद्रियाँ हूँ। मैं इन समस्त भौतिक व मानसिक आवरणों से परे, शुद्ध चैतन्यस्वरूप, अजन्मा, अविनाशी, नित्य, निराकार और सर्वव्यापक शिव है।

न मे द्वेष रागौ न मे लोभ मोही मदो नैव मे नैव मात्सर्य भावः
न धर्मो न चार्थो न कामो ना मोक्षः चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

मुझमें न द्वेष (घृणा) है, न राग (आसक्ति) न लोभ है और न मोह। मुझमें न मद (अहंभाव) है और न ही मात्सर्य (ईर्ष्या या जलन) की भावना। मैं न धर्म (कर्तव्य व आचार), न अर्थ, न काम, और न ही मोक्ष की इच्छा के अधीन हूँ। मैं तो चिदानंद स्वरूप (शुद्ध चेतना और परम आनन्द का रूप), निर्गुण, निराकार शिव हूँ।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखम् न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

मैं न पुण्य हूँ, न पाप, न सुख हूँ, और न ही दुःख। मैं न मंत्र, न वेद, और न ही यज्ञ हूँ। मैं न भोज्य (भक्षण की वस्तु) हूँ, न भोजन, और न ही भोक्ता (भोग का अनुभव करने वाला)। मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप, अनादि, निरपेक्ष, निर्गुण, निर्विकार शिव हूँ।

न मे मृत्यु शंका न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता न जन्मः
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

मुझे न मृत्यु का भय है और न ही जाति भेद। न मेरा कोई पिता है, न माता, और न ही मेरा कोई जन्म हुआ है। न मैं किसी का बंधु हूँ, न मित्र, न गुरु और न ही शिष्य। मैं शुद्ध चेतना एवं परम आनन्दस्वरूप शिव हूँ।

अहं निर्विकल्पों निराकार रूपो विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेयः चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

मैं निर्विकल्प (द्वैत से रहित) हूँ, निराकार स्वरूप हूँ। मैं अपनी सर्वव्यापकता के कारण सम्पूर्ण ब्रह्मांड में, सभी इन्द्रियों में व्याप्त हूँ। मुझमें न किसी वस्तु के प्रति आसक्ति है और न ही मुझे किसी प्रकार की मुक्ति की कामना है। मैं शुद्ध चेतना एवं परम आनन्दस्वरूप शिव हूँ।

इस प्रकार निर्वाणषट्कम् आदि शंकराचार्य द्वारा रचित वह गूढ़ स्तोत्र है, जिसमें आत्मा के वास्तविक स्वरूप का गहन निरूपण किया गया है। जिसमें आत्मा कोई भौतिक, मानसिक, या सामाजिक सत्ता नहीं है न मन है, न इंद्रियाँ, न शरीर, न कर्म, न धर्म, न पाप-पुण्य, न उसका किसी से सांसारिक संबंध। आत्मा शुद्ध चैतन्य है, यह नित्य, अजन्मा, अनंत, निर्विकल्प, निर्विकार, और परम आनन्द स्वरूप है। यह आत्मा ब्रह्म के समान ही अद्वैत है 'शिवोऽहम् शिवोऽहम्' अर्थात् 'मैं ही शिव (परम ब्रह्म) हूँ।'

– राघवेन्द्र प्रताप सिंह शंकरदूत
वाराणसी, उत्तर प्रदेश

राम

जितना हमने माँगा तुमसे, उससे ज्यादा पाया राम।
जीवन की इस तेज धूप में, बनकर आए छाया राम॥

तुमने सच्ची राह दिखाई, तुमने सच्चा ज्ञान दिया।
तुमने अभिशापों को अपने पुण्यों से वरदान किया॥

कष्ट तुम्हारे देख कर सारे दूर हमारे कष्ट हुए।
तुमको जाना तो जीवन के भ्रम सारे स्पष्ट हुए॥

जब जग ने ठुकराया सबको तब तुमने अपनाया राम।
जीवन की इस तेज धूप में बन कर आए छाया राम॥

कष्ट तुम्हारे स्वयं जनित थे, सत्य तुम्हारे अविनाशी।
कौन कहेगा तुम राजा थे, हे महलों के सन्यासी॥

तुम्हें देखकर सारे अवगुण, आसपास के दूर हुए।
नाम तुम्हारा पाकर जग के पत्थर भी मशहूर हुए॥

यह जीवन तो सार हीन था तुमने सार बताया राम।
जीवन की इस तेज धूप में बनकर आए छाया राम॥

– रविन्द्र यादव
युवा कवि (टीकमगढ़)

उड़ोगे कैसे?

जब स्वतन्त्र होने का मार्ग बहुत दुर्लभ हो तो मन बहाने बहाने से बन्धन का ही गुणगान आरम्भ कर देता है। इसमें सुलभता अनुभव होती है। जो नहीं कर सकते उसको भाग्य पर थोप कर सोया जा सकता है। लेकिन मन जिससे प्रकाशित है वो यदा कदा झकझोरता रहता है। अज्ञान के बादलों से आच्छादित मन पर समय समय पर उस प्रकाश की सीधी किरण पड़ती है। उन दुर्लभ क्षणों में आप अपने जीवन का अवलोकन करते हैं। जो जीवन धर्म मार्ग पर चलकर कर्म करते हुए उस प्रकाश तत्त्व से सदैव के लिए एक हो जाने के लिए था, उसे कहां गंवा दिया! यही गीता का प्रथम श्लोक है। ऐसा विषाद होना योग का आरम्भ है। लेकिन विवेक के ये क्षण हमारे पशुत्व आचरण में शीघ्र ही खो जाते हैं। विवेक के ये क्षण दीर्घ करने का उपाय सत् का संग है। सत् का संग श्रेष्ठ मनुष्य का संग है, सही समय का संग है और सही कर्मों का संग है। दैवीय सम्पत्ति को बढ़ाने से ही मार्ग प्रशस्त होता है।

श्रेष्ठ मनुष्य आपको कहां मिलेंगे? रेस्टोरेंट में? बार में? सिनेमा में? आप कहाँ जाते हो, उससे आपका मन प्रभावित होता है। ऐसे स्थानों को खोजें जहां आपके विवेक की वृद्धि हो। सन्तों का संग करें, एकान्त का संग करें, वेदान्त शास्त्रों का संग करें।

समय से हम बंधे हुए हैं। समय के परे जाने का मार्ग भी समय से होकर जाता है। दैवीय सम्पत्ति जब प्रबल हो उसका हमें सदुपयोग करना चाहिए। रात्रि में विवेक क्षीण हो जाता है, पाशविक प्रवृत्ति प्रबल रहती है। ऐसे में उचित है कि जब प्रकृति विश्राम कर रही है, आप भी करें। संध्या का समय प्राकृतिक रूप से अद्वैत का समय है, जब दिन रात के द्वैत का विलय होता है। इस समय का उपयोग सदैव तत्त्व चिंतन में करना चाहिए।

दिन प्रतिदिन अनेकों भाव मन में उत्पन्न होते हैं, कौन से कर्म करने चाहिए, कौन से नहीं, इसका भेद करने की क्षमता बहुत कठिन है। शास्त्र सम्मत कर्म ही करने चाहिए, इससे ही सांसारिक सुख और परमार्थिक मार्ग प्रशस्त होता है। अन्यथा यही कर्म बंधन का कारण बनते हैं। आप कर्म करते समय ये भी विचार कर सकते हैं कि क्या ये मेरे माँ, पिता और गुरु को गौरवान्वित करते हैं?

जीव अज्ञान से बंधा हुआ है और ज्ञान से ही उसकी मुक्ति है। अज्ञान के घने बादलों के परे ज्ञान प्रकाशित आकाश में उड़ने के लिए जीवरूपी पक्षी को दो पंखों की आवश्यकता होती है। ये हैं विवेक और वैराग्य। इनको सुदृढ़ करने का जीव को सतत् प्रयास करते रहना चाहिए। यही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। सच ये है कि आप उड़ने के लिए ही जन्मे हैं, इस अवसर को न गंवाएं।

ॐ तत् सत्।

– शंकरदास

असंग रहो और भगवान को अपना मानो

मेरे आत्मस्वरूप साधक महानुभाव! संसार से सुख की आशा के रहते त्याग नहीं होता, ममता के रहते विकार नहीं मिटते और कामनाओं के रहते शान्ति नहीं मिलती। चाह रहित हुए बिना योग की सिद्धि नहीं मिलती, असंगता के बिना बोध नहीं हो सकता और आत्मीयता के बिना प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह सब बातें ध्रुव सत्य हैं। या कहो कि प्रभु का ऐसा कुछ विधान ही है। इसलिये संसार से सुख की आशा मत करो। प्राप्त की ममता और अप्राप्त की कामना मत करो। निष्काम-भावसे सभी कर्म करो। सब प्रकार की स्वीकृतियों से असंग रहो और भगवान् को अपना मानो। फिर तुम जो कुछ भी साधन करोगे, उसमें सफलता अवश्य मिलेगी। परंतु जो साधन करो वह रुचिकर हो, सन्देह रहित हो और सामर्थ्य के बाहर न हो। कारण, रुचिकर होने से मन और सन्देह-रहित होनेसे बुद्धि साधन में लग जाती है और सामर्थ्य के भीतर होने से उकताहट तथा थकावट नहीं होती। इनके अतिरिक्त सफलता न मिलने में और कोई कारण नहीं है।

जानकारी, मान्यता और जो हम करते हैं, उसमें सफलता मिलना ही साधन की सिद्धि है और सिद्धि कुछ नहीं। परंतु आज क्या होता है कि हम संसार की वास्तविकता को जानते हुए भी उसकी आशा का त्याग नहीं कर पाते। हम भगवान् को मानते हैं, उनसे प्रेम करना चाहते हैं, परंतु नहीं कर पाते। हम ब्रह्म हैं अथवा आत्मा हैं, ऐसा मानते हैं, परंतु बोध नहीं होता। हम निर्दोष होना चाहते हैं, परंतु नहीं हो पाते। हम भगवान् का चिन्तन-ध्यान करते हैं, चित्त में शान्ति नहीं मिलती। हम धर्म को जानते और मानते हैं, परंतु आचरण में नहीं ला पाते। हमने योग की क्रिया करते हुए जीवन का बड़ा भाग बिता दिया, परंतु प्रवृत्तियों का निरोध नहीं कर पाये। यह तो है आज के साधकों की दशा। अब बताओ, क्या ऐसी जानकारी, क्रिया और मान्यता से हमारा काम चल सकेगा? कहना होगा, नहीं चलेगा। जानकारी, मान्यता और क्रियाओं का जब तक जीवन पर प्रभाव नहीं होगा, तब तक तो उन्हें वास्तविक भी नहीं कह सकते। फिर उनसे हमें लक्ष्य की प्राप्ति हो ही कैसे सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। तो बताओ, त्याग और प्यार करना भी किसी से सीखना पड़ता है क्या? जिसको असार और दु:ख रूप जान लेंगे, उसका त्याग और जिसे अपना तथा सुख रूप मान लेंगे, उससे प्यार तो स्वत: होना चाहिये। हम संसार को असत्य और दु:खद जानकर भी उसका त्याग और भगवान् को अपना तथा सुख धाम मानकर भी उनसे प्रेम नहीं कर पाते। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम संसार से सुख की आशा करते रहते हैं एवं उस सर्व-समर्थ प्रभु को सरल हृदय से अपना नहीं मानते। याद रहे, और कुछ भी अपना है और परमात्मा भी अपना है- ये दोनों बातें एक साथ नहीं होतीं। जब तक हम और कुछ भी अपना मानते हैं, तब तक तो मुख से कहते हुए भी हमने सच्चे हृदय से भगवान् को अपना नहीं माना। यही इसकी पहचान है। अतएव यदि इसी जन्ममें सफलता चाहते हो तो उपर्युक्त बातें जीवन में उतारो, सफलता अवश्य मिलेगी। यह बात परम सत्य है। ॐ आनन्द!

– डॉ. अनिल दुबे

महावाक्य

शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् केवलोऽहम्॥

शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवा केवलोऽहम्।
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

निराकार रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥
परात्पर ब्रह्म शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

अहं ब्रह्म अस्मि शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥
मैं तत्त्वमसि सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

प्रज्ञानम् ब्रह्म सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
अयमात्मा ब्रह्म सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

निरंजन ब्रह्म सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥
आनन्दम् ब्रह्म सोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवाः केवलोऽहम्।
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

नहीं बुद्धि मन भी नहीं चित् हूँ मैं,
सदा एक रस हूँ मैं साक्षी शिवोऽहम्।

न मैं ज्ञान इन्द्र नहीं कर्म इन्द्रिय,
नहीं प्राण संज्ञा हूँ दृष्टा शिवोऽहम्॥

मैं तन भी नहीं हूँ न तन भी है मेरा,
नहीं सप्त धातु हूँ अविचल शिवोऽहम्।

न मैं पंच वायु नहीं पंच कोषा,
नहीं भूत पांचों सनातन शिवोऽहम्।

है मुझमें नहीं लोभ मोहादि कुछ भी,
सदा द्वेष रागों से न्यारा शिवोऽहम्।

नहीं लेश भी पुण्य पापों का मुझमें,
अकर्ता अभोक्ता अजन्मा शिवोऽहम्।

नहीं सुख दुःखों का भी आवेश मुझमें,
नहीं वर्ण आश्रम का बन्धन शिवोऽहम्।

न माता पिता बिन्धु कोई है मेरा,
सभी भूत प्राणी का कारण शिवोऽहम्।

सभी ठौर व्यापक में रहता निरन्तर,
सभी में सभी से निराला शिवोऽहम्।

सदा शुद्ध हूँ मैं सदा मुक्त हूँ मैं,
निराकार में निर्विकारी शिवोऽहम्।

नित्योऽहम् परोऽहम् शिवः केवलोऽहम्,
ये सत्गुरु की वाणी सदा ही शिवोऽहम्।

ये वेदों की वाणी सदा ही शिवोऽहम्,
सभी ब्रह्म ऋषियों का अनुभव शिवोऽहम्।

ये सद्गुरु का अनुभव अटल है शिवोऽहम्।
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवः केवलोऽहम्।

चिदानन्द रूपाः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
शिवोऽहम्

सत्गुरु आरती

मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
जिनकी चरण कमल रज सुन्दर,
भव दुःख सकल निबारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
दया से जिनकी द्वैत दूर हो,
मन की माया टारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
वाणी अमृतमय सुन जिनकी,
बुद्धि ब्रह्म को धारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
पाकर के विज्ञान ज्ञान को,
पूर्ण शान्ति विस्तारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
गुरु अविनाशी घट–घट वाशी,
दुनिया तुम्हें पुकारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।

– पाठकों से निवेदन –

Website : www.akhandavedanta.com
E-mail : neerajnikhra@gmail.com, diszvaibhav@gmail.com

गुरु भक्त अपनी ई–मेल पर **"अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता"** पत्रिका नि:शुल्क चाहते हैं तो उपर्युक्त ई–मेल आईडी पर सम्पर्क कर सकते हैं।

पाठकों से अनुरोध

वेदान्त आश्रम के समस्त भक्तों से अनुरोध है कि धार्मिक विषयों पर लेख या कविता, लिखने वाले नव–रचनाकार अपनी रचनाओं को विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका में छपने हेतु भेज सकते हैं। उचित रचनाओं को पत्रिका में स्थान अवश्य दिया जायेगा। रचनायें सुलेख में लिखी हों या फिर टाइप कराकर 10 जनवरी 2026 तक अवश्य भेज दें। सधन्यवाद। **– सम्पादक**

लेख व्हाट्सएप नं. : 9415503668 तथा 9455422522 पर भी भेज सकते हैं।

पूज्य स्वामी जी अखण्डानन्द जी महाराज (पीली कोठी)

प्रार्थना

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूँ अब तेरे काज । पालन करने को आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज।।
अन्तर में स्थित रहकर मेरे बागडोर पकड़े रहना। निपट निरंकुश चचंल मन को सावधान करते रहना।।
अन्तर्यामी को अन्तः स्थित देख सशङ्कित होवे मन। पाप-वासना उठते ही हो नाश लाज से वह जल-भुन।।
जीवों का कलरव जो दिनभर सुनने में मेरे आवे। तेरा ही गुणगान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे।।
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि! तुझमें यह सारा संसार। इसी भावना से अन्तरभर मिलूँ सभी से तुझे निहार।।
प्रतिपल निज इन्द्रिय समूह से जो कुछ भी आचार करूँ। केवल तुझे रिझाने को, बस तेरा ही व्यवहार करूँ।।

आश्रम के प्रतिदिन के कार्यक्रम

प्रातःकाल 4.30 बजे से 5:30 बजे तक	-	प्रभाती ब्रह्म कीर्तन
प्रातःकाल 5:30	-	आरती
प्रातःकाल 5:35 बजे से 7:00 बजे तक	-	योगाभ्यास
प्रातःकाल 8:00 बजे से 9:00 बजे तक	-	गीता स्वाध्याय
सायंकाल 4:00 बजे से 6:00 बजे तक	-	योगवशिष्ठ महारामायण की कथा तथा सन्त महापुरूषों द्वारा वेदान्त के भजन कीर्तन व उपदेश
सायंकाल 4:00 बजे से 6:00 बजे तक	-	16 अक्टूबर से 15 अप्रैल - शीतकालीन समय
सायंकाल 3:00 बजे से 5:00 बजे तक	-	16 अप्रैल से 15 अक्टूबर - ग्रीष्मकालीन समय

आश्रम के वार्षिक कार्यक्रम

गुरु पूर्णिमा (आषाढ़ सुदी पूर्णिमा)

पुण्य स्मृति बसन्त पंचमी (माघ सुदी पंचमी)

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज परमहंस

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज परमहंस